॥ श्रीः ॥

श्रीउपासनात्रयसिद्धांत ।

(अति अपूर्व ग्रन्थ)

जिसमें

श्रीनारायणउपासनासिद्धांत, श्रीकृष्णउपासनासिद्धांत, श्रीरामउपासनासिद्धांत, प्रतिपादित हैं ।

तिनमें

श्रीआचारी वैष्णवोंके मतसे श्रीनारायणउपासना सिद्धांत वर्णनहै और श्रीवृंदावनवासी परम उपासकोंके मतसे श्रीकृष्णउपासनासिद्धांत वर्णन है और श्री अयोध्यावासी महात्माओंके मतसे श्रीरामउपासनासिद्धांत वर्णन है और वेद, पुराण, शास्त्र, संहिता, तंत्र, रहस्य नाटक, रामायण, तथा और भी अनेकों ग्रंथोंके प्रमाण दियेगये हैं । ताते तीनों उपासकोंको अवश्यमेव देखने योग्य है ।

जिसको

श्रीअयोध्यापुरीस्थ कनकभवननिवासी श्री १०८ परम पूज्य स्वामी परमहंस सीताशरणजी महाराजके चरण सेवक वैष्णव श्रीसरयूदासजीने बडे परिश्रमसे गुरुशिष्यसंवादमें रचना किया-

और

सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासके

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन,

"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रित कराकर प्रसिद्ध किया ।

वैष्णव साधु पं० श्रीसरयूदासजी श्रीअयोध्यावासी ग्रंथकार.

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

अथ श्रीउपासनात्रयसिद्धांतः ।

अर्थात्

श्रीमन्नारायणोपासनासिद्धान्त १, श्रीकृष्णोपासनासिद्धांत २, श्रीरामोपासनासिद्धांत ३ ॥

श्लोकः ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो
यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

शिष्य उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि परपुरुपलक्षणम् ॥
यं ब्रह्मादिसुरास्सर्वे ध्यायंति हि मुनीश्वराः ॥ २ ॥

अर्थ-शिष्य बोला, हे भगवन् ! मेरेको पर पुरुप परब्रह्मके लक्षण सुनवेकी इच्छा है सो कृपा करके कहिये जिनको ब्रह्मादिक ३३ कोटि देवता और बड़े २ मुनीश्वर लोग निश्चयपूर्वक ध्यान करतेहैं ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि वेदानां सारमुत्तमम् ॥
उपसनात्रयसिद्धांतं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥

अर्थ-श्रीगुरुस्वामी बोले कि हे तात ! सब वेदोंका उत्तम सार जो उपासनात्रय-सिद्धांत है जो कि देवताओंको भी अति दुर्लभ है सो कहताहूं तुम सुनो । वेद, शास्त्र, पुराणादिकोंमें श्रीभगवान्के चौवीस अवतार वर्णन कियेगये हैं तिनमें श्रीराम और कृष्ण यही दो अवतार मुख्य हैं, इन्हींकी उपासना सब ऋपि, मुनियोंने की है और सब अवतारोंकी नहीं। ऐसा पाद्मोत्तरखण्ड २४१ अध्यायमें कहा है, यथा—

नोपास्यं हि भवेत्तस्य शक्त्यावेशान्महात्मना ॥
उपास्यौ भगवद्भक्तैर्विप्रमुख्यैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥
रामकृष्णावतारौ तु परिपूर्णौ हि सद्गुणैः ॥
उपास्यमानावृपिभिरपवर्गप्रदौ नृणाम् ॥ ५ ॥

अर्थ-उन कला अंश शक्ति आवेशादि अवतारोंकी उपासना महात्मा लोग नहीं करते केवल राम और कृष्ण यह दो ही स्वरूप भगवद्भक्त ब्राह्मणों करके उपासना योग्य हैं, काहेसे कि, राम कृष्ण अवतार सात्त्विकगुणों करके परिपूर्ण हैं, इसीसे ऋषिलोग भी उपासना करते हैं और इन्हीं दोनोंकी उपासना मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली है तिनमेंसे श्रीकृष्णोपासना मुख्य वृन्दावनवासी करतेहैं और श्रीरामोपासना श्रीअयोध्यावासी करतेहैं।

प्रश्न-हे स्वामीजी ! अचारी वैष्णव किनकी उपासना करतेहैं सो कहिये ?।

उत्तर-हे शिष्य ! आचारी वैष्णव श्रीमन्नारायणकी उपासना करतेहैं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! रामकृष्णकी उपासना क्या आचारी वैष्णव नहीं करतेहैं ?

उत्तर-हे शिष्य ! रामकृष्णकी भी उपासना करतेहैं परंतु मुख्य नारायणहीकी उपासना करतेहैं ।

प्रश्न-स्वामी जी ! क्या राम कृष्ण और नारायणमें कुछ भेद भी है जो भिन्न मानते हैं ? ।

उत्तर-हे शिष्य ! भेद कुछ भी नहीं है केवल अंश अंशकि गुण रूपका भेद है तत्त्व भेद नहीं है ।

यथा-ब्रह्मवैवर्ते कृष्णजन्म खंड ४३ अध्याय ।

ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन संततम् ॥
तद्ब्रह्म विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिव ॥ ६ ॥
मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः ॥
स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च ॥ ७ ॥

अर्थ-ब्रह्म एक है, मूर्ति गुण भेद करके सदा भिन्न है, वह ब्रह्म विविध वस्तु है, तिनमें सगुण और निर्गुण दो स्वरूप प्रधानहैं,जो माया शबलित है सो सगुण है, जो मायातीत है सो निर्गुण है, स्वेच्छामय भगवान् इच्छाको भी करतेहैं, यह वचन विष्णुजीका शंकरसे हैं । इसी प्रकारसे रूपमें गुणमें भेद जानतेहैं, जैसे आचारी वैष्णव मुख्य नारायणको मानते हैं और नारायणहीसे २४ अवतार मानतेहैं वैसे

ही वृंदावनके निवासी लोग मुख्य कृष्णको मानतेहैं और कृष्णहीसे २४ अवतारोंको मानतेहैं, वैसाही सिद्धांत अयोध्यावासियोंका है कि मुख्य राम ही हैं, रामहीसे विष्णु नारायण कृष्णादिक २४ अवतार होतेहैं, हे शिष्य! इसी प्रकारसे तीनों उपासकोंके मत भिन्न हैं।

प्रश्न–हे स्वामी जी! इन तीनोंमेंसे सिद्धांत मत कौन है सो कृपा करके कहिये?

उत्तर–हे शिष्य! आप २ के तीनों मत सिद्धांत हैं, हम तीनोंके सिद्धांत मतको शास्त्रोंके प्रमाणोंसे कहतेहैं तुम जानलो, उनमें प्रथम नारायणसिद्धांत कहतेहैं। नारायण उपनिषद्में कहा है कि सब नारायणहीसे है। यथा–

ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत। प्रजास्सृजेयेति नारायणात्प्राणो जायते मनस्सर्वेंद्रियाणि च खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी नारायणाद्ब्रह्मा जायते नारायणाद्रुद्रो जायते नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते नारायणादिंद्रो जायते नारायणाद्द्वादशादित्याः नारायणादेकादशरुद्राः नारायणादष्टौ वसवः सर्वा देवताः सर्वे ऋषयः सर्वाणि च्छंदांसि सर्वाणि च भूतानि नारायणादेव समुत्पद्यंते नारायणे प्रलीयंते॥ ८॥

अर्थ–एक आदि पुरुष नारायण हैं, जो अपनी इच्छासे प्रजाओंको रचतेहैं, नारायणसे प्राण उत्पन्न होतेहैं नारायणसे मन तथा सर्व इन्द्रियां होतीहैं और आकाश, वायु अग्नि, जल, विश्वको धारणकरनेवाली पृथ्वी होतीहै, नारायणसे ब्रह्माजी होतेहैं, नारायणसे शिवजी होतेहैं, नारायणसे प्रजापति (मन्वादि) होतेहैं, नारायणसे इन्द्र होतेहैं, नारायणसे द्वादश सूर्य होतेहैं, नारायणसे एकादशरुद्र होतेहैं, नारायणसे आठों वसु होतेहैं, नारायणसे सर्व देवता, सर्व ऋषि, मुनि, वेद, शास्त्र, सर्व जीवात्मा होतेहैं और प्रलयांतमें नारायणही में सब लीन होजातेहैं, इससे नारायण सर्वोपरि हैं॥ पुनः–

अथ नित्यो देव एको नारायणो ब्रह्मा च नारायणः शिवश्च नारायणः शक्रश्च नारायणः द्वादशादित्याश्च नारायणोऽष्टौ वसवोऽश्विनौ च नारायणः सर्वे ऋषयश्च नारायणः कालश्च

नारायणो दिशश्च नारायणोऽधश्च नारायण ऊर्ध्वं च नारायणोंतर्बहिश्च मूर्तामूर्तो च नारायणो नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्॥ ॐ अथ नित्यो निष्कलंको निराख्यातो निर्विकल्पो निरंजनः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् य एवं वेद ॥ ९ ॥

अर्थ-नित्य एक देव नारायण हैं, नारायण ही ब्रह्मा हैं, नारायण ही शिव हैं, नारायण ही इन्द्र हैं, नारायण ही द्वादश सूर्य हैं, नारायण ही आठों वसु हैं, नारायण ही आश्विनीकुमार हैं, नारायण ही सब ऋषि मुनि हैं, नारायण ही काल हैं, और नारायण ही दशों दिशा हैं, नारायण ही नीचे हैं, नारायण ही ऊपर हैं, नारायण ही बाहर, भीतर, मूर्तामूर्त (सगुण निर्गुण) हैं, नारायण ही यह दृश्यादृश्य, भूत, भविष्यत्, वर्तमान हैं, नित्य हैं, निष्कलंक हैं, निराख्यात (अप्रसिद्ध) हैं, विकल्पसे रहित हैं, निरंजन (माया से रहित हैं,) परम शुद्ध हैं, एक अद्वितीय ब्रह्म नारायण ही हैं दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा जानो। फिर श्रुति है-

अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ॥
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ १० ॥

पुनरपि श्रुतिः ।

यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ ११ ॥

अर्थ- सर्व जीवोंके भीतर प्रवेश करके जो शासन करते हैं, वही नारायण परमात्मा बाहर भीतर एकरस सबमें व्याप्त हैं॥ जो कुछ इस संसारमें देख पड़ता अथवा सुनपड़ता है उन सबके बाहर भीतर श्रीनारायण व्याप्त होरहेहैं, इससे हे शिष्य ! नारायणसे परे कोई देवता, देवी नहीं है, सबके आदिकारण नारायण हीहैं इस प्रकार सब श्रुतियोंका सिद्धांत है ॥ आदिशास्त्रके वक्ता मनुजीने भी मनुस्मृतिके प्रथमाध्यायमें कहा है । यथा-

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ १२ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ १३ ॥

अर्थ–अपने शरीरसे नानाप्रकारकी प्रजाओंको रचनेकी इच्छा करनेवाले उस परमात्माने प्रथम 'जल हो,' इतने कथनमात्रसे ही जलोंको रचा और उस जलमें अपना शक्तिरूप बीज (वैष्णव तेज) को स्थापन किया ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्व्वलोकपितामहः ॥ १४ ॥

अर्थ–वह स्थापन कियाहुआ बीज सुवर्णके वर्णवाला, सूर्यके समान कांतियुक्त, एक अण्ड (गोलाकार) होगया उस अण्डमें उन परमात्माने स्वयं ब्रह्मारूपसे सर्व लोकोंके पितामहने जन्म ग्रहण किया ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १५ ॥

अर्थ–नरनामक परमेश्वरके शरीरसे जलोंकी उत्पत्ति हुई, इस कारणसे उन जलोंको नारा कहतेहैं और यह सम्पूर्ण जल ही प्रलयकालमें परमात्माका अयन (स्थान) थे, इस कारण परमात्माको नारायण कहतेहैं ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जो परमात्मा रचित वस्तुमात्रका कारण है, जो इंद्रियोंका अगोचर है, जिसका क्षय उदय नहीं होताहै, जो सत् पदसे कहा जाताहै और जो प्रत्यक्षका विषय न होनेके कारणसे असत् शब्दसे भी कहाजाताहै, उस परम पुरुष परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ वह अण्डजात पुरुष संसारमें ब्रह्मा नामसे कहेजातेहैं ॥ हे शिष्य ! यह आदि शास्त्रका सिद्धांत है, जो कि "सर्वशास्त्रमयो मनुः" कहे जातेहैं । फिर भी श्रुतिसिद्धांत है कि, "यत्किंचिन् मनुरवदत् तद्वै भेषजम्" चारों वेदोंका सिद्धांत है कि, जो कुछ मनुजीने कहाहै वह निश्चय पूर्वक औषधरूप है, इससे मनुस्मृति शास्त्र सर्वोपरि है ॥

प्रश्न–हे स्वामी जी ! बहुतेरे विद्वान् लोग शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य इन सबको ब्रह्म कहतेहैं सो क्यों ?

उत्तर–हे शिष्य ! मतमतांतरकी बात भिन्न है और कहनेवालोंका क्या कोई मुख पकडेगा, पासमें सस्ते मुख हैं. जो चाहे सो बोले परंतु पक्षपात छोडकर देखें तो श्रीमन्नारायण ही जगत्कारण आदि ब्रह्म सिद्ध होतेहैं, काहे से कि

नारायणो दिशश्च नारायणोऽधश्च नारायण ऊर्ध्वं च नारायणोंतर्बहिश्च मूर्तामूर्तौ च नारायणो नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्॥ ॐ अथ नित्यो निष्कलंको निराख्यातो निर्विकल्पो निरंजनः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् य एवं वेद ॥ ९ ॥

अर्थ-नित्य एक देव नारायण हैं, नारायण ही ब्रह्मा हैं, नारायण ही शिव हैं, नारायण ही इन्द्र हैं, नारायण ही द्वादश सूर्य हैं, नारायण ही आठों वसु हैं, नारायण ही आश्विनीकुमार हैं, नारायण ही सब ऋषि मुनि हैं, नारायण ही काल हैं, और नारायण ही दशों दिशा हैं, नारायण ही नीचे हैं, नारायण ही ऊपर हैं, नारायण ही बाहर, भीतर, मूर्तामूर्त (सगुण निर्गुण) हैं, नारायण ही यह दृश्यादृश्य, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान हैं, नित्य हैं, निष्कलंक हैं, निराख्यात (अप्रसिद्ध) हैं, विकल्पसे रहित हैं, निरंजन (माया से रहित हैं,) परम शुद्ध हैं, एक अद्वितीय ब्रह्म नारायण ही हैं दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा जानो। फिर श्रुति है-

अंतः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ॥
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ १० ॥

पुनरपि श्रुतिः ।

यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ ११ ॥

अर्थ- सर्व जीवोंके भीतर प्रवेश करके जो शासन करते हैं, वही नारायण परमात्मा बाहर भीतर एकरस सबमें व्याप्त हैं ॥ जो कुछ इस संसारमें देख पड़ता अथवा सुनपड़ता है उन सबके बाहर भीतर श्रीनारायण व्याप्त होरहेहैं, इससे हे शिष्य ! नारायणसे परे कोई देवता, देवी नहीं है, सबके आदि कारण नारायण हीहैं इस प्रकार सब श्रुतियोंका सिद्धांत है ॥ आदिशास्त्रके वक्ता मनुजीने भी मनुस्मृतिके प्रथमाध्यायमें कहा है । यथा-

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्व्वभूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ १२ ॥

अर्थ-जो सम्पूर्ण वेद, पुराण, शास्त्र, इतिहास आदिमें प्रसिद्ध हैं, जिनका केवल मनसे ही ग्रहण होता है, ऐसा परमात्मा परम सूक्ष्म अव्यक्त सनातन सबके अन्तर्यामी और अचिन्त्य स्वयं ही प्रथम शरीराकारसे प्रकट हुए ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ १३ ॥

अर्थ-अपने शरीरसे नानाप्रकारकी प्रजाओंको रचनेकी इच्छा करनेवाले उस परमात्माने प्रथम 'जल हो,' इतने कथनमात्रसे ही जलोंको रचा और उस जलमें अपना शक्तिरूप बीज (वैष्णव तेज) को स्थापन किया ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्व्वलोकपितामहः ॥ १४ ॥

अर्थ-वह स्थापन कियाहुआ बीज सुवर्णके वर्णवाला, सूर्यके समान कांतियुक्त, एक अण्ड (गोलाकार) होगया उस अण्डमें उन परमात्माने स्वयं ब्रह्मारूपसे सर्व लोकोंके पितामहने जन्म ग्रहण किया ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १५ ॥

अर्थ-नरनामक परमेश्वरके शरीरसे जलोंकी उत्पत्ति हुई, इस कारणसे उन जलोंको नारा कहतेहैं और यह सम्पूर्ण जलही प्रलयकालमें परमात्माका अयन (स्थान) थे, इस कारण परमात्माको नारायण कहतेहैं ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ १६ ॥

अर्थ-जो परमात्मा रचित वस्तुमात्रका कारण है, जो इंद्रियोंका अगोचर है, जिसका क्षय उदय नहीं होताहै, जो सत् पदसे कहा जाताहै और जो प्रत्यक्षका विषय न होनेके कारणसे असत् शब्दसे भी कहाजाताहै, उस परम पुरुष परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ वह अण्डजात पुरुष संसारमें ब्रह्मा नामसे कहेजातेहैं ॥ हे शिष्य ! यह आदि शास्त्रका सिद्धांत है, जो कि "सर्वशास्त्रमयो मनुः" कहे जातेहैं । फिर भी श्रुतिसिद्धांत है कि, "यत्किंचिन् मनुरवदत् तद्वै भेषजम्" चारों वेदोंका सिद्धांत है कि, जो कुछ मनुजीने कहाहै वह निश्चय पूर्वक औषधरूप है, इससे मनुस्मृति शास्त्र सर्वोपरि है ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! बहुतेरे विद्वान् लोग शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य इन सबको ब्रह्म कहतेहैं सो क्यों ?

उत्तर-हे शिष्य ! मतमतांतरकी बात भिन्न है और कहनेवालोंका क्या कोई मुख पकडेगा, पासमें सस्ते मुख हैं. जो चाहे सो बोले परंतु पक्षपात छोडकर देखें तो श्रीमन्नारायण ही जगत्कारण आदि ब्रह्म सिद्ध होतेहैं,. काहे से कि

नारायण नामका अर्थ सर्व व्यापक है, विष्णु नामका तथा वासुदेव नामका भी वहीं व्यापक अर्थ है, इस बातको सब विद्वान् लोग जानतेहैं. और शिव, गणेश, शक्ति (दुर्गा देवी), सूर्य इन सब नामोंका अर्थ सर्व व्यापक नहीं है यह भी सब विद्वानोंको अच्छी रीतिसे विदित है और जिसके नामके अर्थ सर्व व्यापी नहीं है वह कभी नहीं ब्रह्म सिद्ध हो सकता है, यह बात सर्वथा निश्चित है, दूसरा हेतु यह है कि ' मनुस्मृति ' प्रधान ग्रंथ है और सबका आदि है निष्पक्षपात है, इस बातको भी सब जानतेहैं, सो मनुने नारायणहीको ब्रह्म कहा है तो दूसरा ब्रह्म कौन है कि जिसका मनुजीने नामतक भी नहीं लिया है और मनु सिद्धांत सर्वोपरि है, काहेसे कि बृहस्पतिजीने कहाहै कि-

वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोःस्मृतम् ॥
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-वेदार्थमें प्रधान मनुस्मृति है, मनुजीके अर्थसे जो विपरीत है सो स्मृति प्रशस्त नहीं है ॥ फिर भी कहा है कि-

तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च ॥
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते ॥ १८ ॥

अर्थ-तर्क व्याकरणादि सकल शास्त्र तबतक ही शोभित होतेहैं, जबतक धर्म, अर्थ और मोक्षका उपदेश करनेवाला मनु देखनेमें नहीं आताहै॥ हे शिष्य ! ऐसे ही महाभारतमें भी कहा है । यथा-

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम् ॥
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥ १९ ॥

अर्थ-पुराण, मनुस्मृति, षडंग, वेद यह चारो आज्ञासिद्ध हैं प्रतिकूल तर्कसे इनको अन्यथा नहीं करना चाहिये; ऐसे २ बहुत कहा है इससे मनुस्मृति सामान्य शास्त्र नहीं है जो मानव शास्त्र कहा है सोई प्रमाण है, हे शिष्य ! जो कोई नारायणको छोडकर अन्य देवताओंको ब्रह्म कहते हैं सो भी संसारमें अद्वितीय मूर्ख हैं, विशेष क्या कहें पद्मोत्तरखंडके २३४ अध्यायमें शिवजीने पार्वतीजीसे कहा है कि-

येऽन्यं देवं परत्वेन वदंत्यज्ञानमोहिताः ॥
नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ॥ २० ॥

अर्थ-जे अज्ञानमें मोहित होकर नारायणसे अन्य देवताओंका परत्व कहतेहैं वह निश्चय करके पाषंडी हैं ॥

प्रश्न–हे स्वामी जी! नारायणनामका अर्थ विशेष और कहिये?
उत्तर–हे शिष्य! वृद्धहारीत धर्मशास्त्रमें ऐसा कहाहै। यथा ३ अध्यायमें–

महाभूतान्यहंकारो महदव्यक्तमेव च ॥
अण्डं तदंतर्गता ये लोकाः सर्वे चतुर्दश ॥ २१ ॥
चतुर्दशशरीराणि कालः कर्मेति वै जगत् ॥
प्रवाहरूपेणैवैषां नारत्वेनोच्यते बुधैः ॥
तेषामपि निवासत्वान्नारायण इतीरितः ॥ २२ ॥

अर्थ–महापंचभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, प्रकृति, पुरुष इन सातों करके युक्त जे ब्रह्माण्ड है जिसके अंतर्गत जे चौदह लोक हैं। और चतुर्दश जे शरीर हैं काल है कर्म है ऐसा जो महाप्रवाहरूप संसार है सो सब नार है तिनमें निवास होनेसे नारायण ऐसा पंडित कहतेहैं। हे शिष्य! ऐसेही अन्यस्मृतिमें भी कहा है, यथा–

नारास्त्ववति सर्वपुंसां समूहः परिकीर्तितः ॥
गतिरालम्बनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ २३ ॥
नारो नराणां संघातस्तस्याहमयनं गतिः ॥
तेनास्मि मुनिभिर्नित्यं नारायण इतीरितः ॥ २४ ॥
नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः ॥
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ २५ ॥

अर्थ–नारा ऐसा शब्द सबपुरुषोंके समूहोंको कहतेहैं तिस नरसमूहके गति और आलंबन हो उस करके नारायण कहा है। नरसे भया है सो नार कहतेहैं और नरोंका समूह तिसके निवास और गति हूं इस कारणसे मुनियों करके नित्य नारायण ऐसा कहाजाताहूं। यह वचन भगवानके हैं नर परमात्मासे जो उत्पन्न भयाहै तत्त्व उसको नार कहतेहैं पंडितलोग जानतेहैं वही नार तिसका अयन (स्थान) है इस करके नारायण ऐसा कहा है॥ऐसाही स्मृतिसारमें भी कहा है यथा–

ज्ञानादयो गुणाः संति लक्ष्मीर्नित्यानपायिनी ॥
भूमिलीलादयो देव्यः शेषाद्या नित्यसूरयः ॥ २६ ॥
तद्धामपरमः कालः पुरुषः प्रकृतिस्तथा ॥

महदादिधरांतानि सप्त चावरणान्यपि ॥ २७ ॥
ब्राह्ममण्डं तदंतस्था लोकाश्च सचराचराः ॥
एवमण्डान्यनंतानि तत्सर्वं नारमुच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ-ज्ञानादिक जितने गुणहैं, लक्ष्मी भूमि लीलादि जितनी देवी हैं, शेष सनकादि जितने नित्य ज्ञानी हैं और ब्रह्मलोकसे लेकर काल, पुरुष, प्रकृति तथा महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह सप्तावरण करके युक्त ब्रह्माण्ड और उस ब्रह्माण्डके रहनेवाले सब चराचर जीव ऐसे २ कोटिन ब्रह्माण्ड उन सबको नार कहा है, तिन सबमें जो वास करे उसको नारायण कहतेहैं ॥ हे शिष्य ! जैसा मनुजीका सिद्धांत है वैसेही सबस्मृतियोंका भी सिद्धान्त है, सोई सिद्धांत पुराणका है । यथा ब्रह्माण्डे ९७ अध्यायमें-

आपो नरस्य सूनत्वान्नारा इति प्रकीर्तिताः ॥
विष्णोस्त्वायतनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ २९ ॥
नारायणपरा लोका नारायणपराः सुराः ॥
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम् ॥ ३० ॥
नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम् ॥
नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः ॥ ३१ ॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः ॥
अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मिके ॥ ३२ ॥

अर्थ-आप (जल) नर परमात्माके सूत्रसे अर्थात् नरसे जो उत्पन्न हो सो. नारा ऐसा कहा है, वह नारा पूर्व प्रलयकालमें विष्णु भगवानके स्थान होनेसे नारायण कहा है ॥ नारायणपरे लोक हैं नारायणपरे देव सब हैं नारायण परम सत्य हैं नारायण परम पद हैं ॥ नारायणपरा पृथ्वी हैं नारायणपर जल हैं नारायणपर अग्नि हैं नारायणपरम नभ हैं॥ नारायण परम वायु है नारायण परम मन हैं अहंकार और बुद्धि दोऊ नारायणके स्वरूप हैं ॥ हे शिष्य ! ऐसे ही भागवतमें २ स्कंधमें ब्रह्माजीने नारदसे कहा है। यथा-

नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ॥
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ ३३ ॥

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ ३४ ॥

अर्थ—नारायणपर वेद हैं नारायणके अंगसे सब देवतालोग भयेहैं नारायणपर लोक हैं नारायण परम यज्ञ हैं नारायणपरं योग हैं नारायणपर तप हैं नारायणपर ज्ञान हैं नारायण परम गति हैं॥ भाव जो कुछ है सो सब नारायण ही हैं॥ ऐसे ही भागवतके प्रथम स्कंधके २ अध्यायमें कहा है यथा–

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ ३५ ॥
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ–वासुदेवपर वेद हैं वासुदेवपर यज्ञ हैं वासुदेवपर योग हैं वासुदेवपरा· क्रिया हैं वासुदेवपर ज्ञान हैं वासुदेवपर तप हैं वासुदेवपर धर्म हैं वासुदेवपरा गति हैं।

प्रश्न–हे स्वामी जी ! नारायण और वासुदेव एक ही हैं कि भिन्न हैं ?

उत्तर–हे शिष्य ! यहां पर (वस निवासे) धातुसे नारायण और वासुदेवका एक ही अर्थ है सोई (विष्लृ व्याप्तौ) धातुसे विष्णुका भी अर्थ है इससे एक ही है। हे शिष्य ! विष्णुके सवनामोंमें प्रधान तीन ही नाम हैं नारायण, विष्णु, वासुदेव, तिनमें भी मुख्य नारायण नाम है और विष्णुगायत्रीमें तीनों नाम हैं यथा–ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ इस प्रकारसे कहाहै तीनों एक ही हैं, एही तीनों मंत्रका प्रभाव नारायण कवचमें कहा है श्रीभागवतमें, सो देख लेना फिर भी नारायणका परत्व पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें २४२ अध्यायमें ऐसा कहा है–

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किंचिज्जीवसंज्ञकम् ॥
स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥ ३७॥
शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनींद्रियाणि च ॥
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ॥ ३८ ॥
ब्रह्मादि स्तंबपर्यंतं सर्वं नारायणात्मकम् ॥
नारायणात्परं किंचिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः ॥ ३९ ॥

अर्थ-भूत जो होगया भव्य जो होरहाहै भविष्यत् जो होनेवाला है इन तीनों कालमें जो कुछ जीवसंज्ञावाले हैं स्थूल सूक्ष्म परम सूक्ष्म सब नारायणात्मक हैं ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इत्यादि विषय हैं और श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिकादि ले इन्द्रियां हैं इहां बहुत कहनेका प्रयोजन क्या है जो कुछ इस संसारमें चराचर जीव हैं ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सब नारायण स्वरूप हैं। नारायणसे परे कुछ भी नहीं देखताहूं हे ब्राह्मण! सब यह वचन शिवजीके हैं, हे शिष्य! ऐसा ही महाभारतमें भगवत वचन है यथा-

रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः ॥
ब्रह्मासमाश्रितो मह्यं नाहं कंचिदुपाश्रये ॥ ४० ॥
ममाश्रयस्तु नो कश्चित्सर्वेषामाश्रयो ह्यहम् ॥
इदं रहस्यं कौन्तेय प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-शिवके आश्रित देवता सब हैं ब्रह्माके आश्रय शिवजी हैं मेरे आश्रयमें ब्रह्माजी हैं हम किसीके आश्रित नहीं हैं मेरा आश्रय कोई नहीं हम सबके आश्रय हैं यह रहस्य गुप्त कहा इससे परे कुछ नहीं है ॥ फिर भी कहा है यथा-

नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च संततम् ॥ ४२ ॥
सर्वे देवाः सपितरो ब्रह्माद्याश्चांडमध्यगाः ॥
विष्णोः सकाशादुत्पन्ना इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ ४३ ॥

अर्थ-नारायणसे परे देवता न भया न होगा यह रहस्य वेद पुराणका सार है ॥ सब देवता पितरोंके सहित ब्रह्मादिक जो ब्रह्मांडके बीचमें रहतेहैं सो सब विष्णुहीसे हुएहैं ऐसी वेदकी श्रुति है। हे शिष्य! इसी प्रकारके बहुत वचन हैं नारायणसे परे कुछ नहीं है इसी परब्रह्म नारायणके अंश कलादिसे २४ अवतार होतेहैं सो भागवतके प्रथमाध्यायमें प्रसिद्ध है यथा-

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥
संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ ४४ ॥

अर्थ-सूतजी बोले, कि हे शौनक ऋषि! भगवानने महत्तत्त्व आदि लेकर प्रथम पुरुष याने नारायणरूप धारण किया संसार रचनेकी इच्छा करके सोलह कलाके अवतार लिया।

प्रश्न–हे स्वामी जी ! कला किसको कहतेहैं। और कौन २ षोडश कला हैं सो कहिये ? ।

उत्तर–हे शिष्य ! छान्दोग्य ब्राह्मणके चतुर्थ प्रपाठकमें वृष अग्नि हंस मद्गुके सहित सत्य कामके संवादमें कहा है कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर यह चार दिशा ब्रह्मकी चार कला हैं (कला षोडशभागका एक भाग) यह चारकला ब्रह्मकी एकपाद मात्र कहाजाताहै इसका नाम प्रकाशवान् है दूसरा पृथिवी, अंतरिक्ष, द्युलोक, समुद्र इन चार कलाओंका एकपाद और है यह ब्रह्मका दूसरा पाद है इसका नाम अनंतवान् है तीसरा अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् इन चार कलाओंका नाम ज्योतिष्मान् पाद है यह ब्रह्मका तीसरा पाद है यह तीन पाद विभूति अमृतरूप है सो विरजा नदीके पारमें है यथा 'त्रिपादभूतिर्वैकुंठे विरजायाः परे तटे' इति भार्गवपुराणे, और चौथा प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाक् इन चार कलाओंका नाम आयतनवान् है यह ब्रह्मका चौथा पाद है इसीसे कोटि २ ब्रह्मांडकी रचना होती है इसीमें तीनों लोक हैं। यथा–गीतायां (एकांशेन स्थितो जगत्) ऐसा कहाहै। इसी परमात्माको नारायण, विष्णु, विराट्, पुरुष आदि कहकर वेद गातेहैं।

पुनः श्रीभागवते ॥

यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ ४५ ॥

अर्थ–जब जलशायी नारायणने योगनिद्राको विस्तार किया उस समयमें नारायणकी नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे संसार रचनेवालोंके पति ब्रह्माजी हुये जिनके शरीरसे संसारका विस्तार हुआ वह भगवान्का विशुद्ध रूप है सो कहतेहैं॥

पश्यंत्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥
सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यंबरकुण्डलोल्लसत्॥४६॥
एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥
यस्यांशांशेन सृज्यंते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ४७ ॥

अर्थ–जिनके असंख्य चरण, जंघा, भुजा, मुख, अद्भुत हैं जिसमें असंख्य मस्तक, श्रवण, नेत्र, नासिका हैं असंख्य शिर, भूषण, वस्त्र, कुंडल विराज रहेहैं ऐसे स्वरूपका ज्ञाननेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं॥ यह आदिनारायण सब अवतारोंका बीज अव्यय हैं जिनके अंश ब्रह्माजी अपने अंश कलासे देवता, पशु, पक्षी, मनुष्यादिको रचतेहैं॥

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥
इंद्रारिव्याकुलं लोकं मृडयंति युगे युगे ॥ ४८॥

अर्थ-उस अविनाशी पुरुष नारायणके यह २४ अवतार अंश और कलापुरुष हैं श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं पूर्वोक्त षोडश कलात्मक नारायणभगवान् हैं जब संसार दैत्योंसे व्याकुल होजाताहै तब युगयुगमें अवतार लेकरके सबको सुखी करतेहैं ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! कृष्णभगवान् तो षोडश कलाके हैं और रामजी कितने कलाके हैं सो कहिये ?।

उत्तर-हे शिष्य ! रामजी भी पूर्ण ही अवतार हैं सो प्रथम ही पद्मपुराणका प्रमाण दिया है तथा और भी सब पुराणोंमें प्रसिद्ध है इससे प्रमाण देनेका प्रयोजन नहीं है परन्तु इहां भागवतमें रामावतारको अंश ही कहाहै इसका कारण यह है कि रामावतारमें चार भेद हैं सो आगे रामोपासनासिद्धांतमें कहेंगे इहांपर जय विजयके लिये जो नारायण रामावतार हुएहैं सो अंश कला हैं ।

प्रश्न-हे स्वामी ! इहांपर नारायण स्वयं कृष्ण भगवान् हैं कि गोलोकवासी स्वयं कृष्ण भगवान् हैं सो कहिये ? ।

उत्तर-हे शिष्य ! इहां भागवतमें नारायणही स्वयं कृष्ण हुए हैं गोलोकवासी कृष्ण नहीं हैं हे शिष्य ! भागवतहीमें चार भेद कृष्णावतारमें कहाहै एक तो येही जो कि कहिं आये हैं दूसरा क्षीरसागरके वासी (भूमा) पुरुष उनके अंश कृष्ण हैं। यथा प्रमाण-

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमंतिमे ॥ ४९ ॥

अर्थ-भागवतके दशमस्कंध ८९ अध्यायमें लिखा है जिस समय भगवान् अर्जुनको लेकर ब्राह्मणपुत्रोंको लेनेको क्षीरसागर गयेहैं उस समयमें अष्टभुज भूमा पुरुषने दोनोंको देख करके कहा कि आप दोनोंको देखनेके लिये मैं ब्राह्मणपुत्रोंको ले आया हूं पृथ्वीके भार उतारनेके लिये मेरी कलासे दो अवतार लिये हैं इससे असुरोंको मारकर शीघ्र मेरे पास आओ ॥ ऐसा कहा है इससे स्वयं कृष्णावतार नहीं सिद्ध भया तीसरा शुक्ल कृष्ण केशका अवतार कहा है सो भागवतके द्वितीय स्कंधमें ब्रह्माजीने नारदजीसे कहा है-

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलयासितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥

अर्थ-असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित भूमि क्लेश नाश करनेके लिये कलासे श्वेत और कृष्ण केश अवतार लेंगे जिनका मार्ग नहीं जानाजाय वह अपनी महिमाको प्रगट करनेवाले कर्म करेंगे। हे शिष्य ! महाभारतमें भी ऐसाही कहा है॥ यथा-

स चापि केशौ हरिरुच्चजह्रे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्॥
तौ चापि केशावविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च॥५०॥

अर्थ-जब सब देवताओंनें भगवानका कृष्णावतार होनेके लिये प्रार्थना किया तब भगवानने दो बाल एक सफेद एक काला उखाडे वह दोनों बाल यादवोंके कुलस्त्री रोहिणी और देवकीमें प्रवेश करगये। जो भगवान्का श्वेत केश रहा उससे संकर्षण उत्पन्न हुये दूसरे श्याम वर्ण वाले केशसे केशी वधकारी श्रीकृष्णचन्द्र हुए। पुनः ब्रह्मपुराणे ७२ अध्याये॥

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः॥
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले॥
अवतीर्य्य भुवो भारं क्लेशहानिं करिष्यतः॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा॥
तस्यायमष्टमो गर्भो मत्केशो भवितामराः॥
अवतीर्य्य च तत्राय कंसं घातयिता भुवि॥

अर्थ- देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान् परमेश्वर निजात्मक श्वेत, कृष्ण दो केश उखाडकर बोले कि हे देव ! सब मेरा दोनों केश पृथिवीतलमें अवतार लेकर पृथिवीभारको दूर करेंगे। वसुदेवके स्त्री जो देवतुल्य देवकीहैं तिनके आठवां गर्भ यह मेरा केश होगा तहां अवतार लेकर यह कंसको मारेंगे। चौथा नर नारायण कृष्ण अर्जुन हुये हैं सो चौथे स्कंधमें प्रसिद्ध हैं। यथा-प्रथमाध्याये भा०-

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ॥
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ॥ ५१॥

अर्थ-जब देवताओंने प्रार्थनाकरी तब नर नारायण गंधमादन पर्वतको चले गये सो उन्ही दोनोंने भूमिका भार उतारनेके लिये इहां अवतार लियेहैं इनम नरके अंशसे तो कुरु कुलमें अर्जुन हुये और नारायणके अंशसे यदुकुलमें कृष्ण हुये सोई बात आदि कवि वाल्मीकिजीने उत्तर काण्डके ५३ सर्गमें कहाहै। यथा-

वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः
स ते मोक्षयिता शापाद्राजंस्तस्माद्भविष्यसि ॥ ५२ ॥
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥
भारावतरणार्थं हि नरनारायणावुभौ ॥ ५३ ॥

अर्थ-श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे कहाहै जिस समयमें राजा नृगको ब्राह्मणनें शाप दिया और कहा कि जब यदुकुलकी कीर्ति बढानेवाले साक्षात्विष्णु जी वासुदेव नामसे शरीरधारण करेंगे वह तुमको इस योनिसे मोक्ष करेंगे अब तुम गिरगट होगे काल पाकर नर नारायण अवतार होंगे उन्हीं करके मोक्ष होगा। हे शिष्य! इसी प्रकारसे कृष्णावतारमें चार भेद हैं तिनमें स्वयं नारायणही कृष्णावतारहैं एही सिद्धांत सर्वोपरि है ॥ यथा प्रमाण-

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्द्धं जगत्पतिः ॥
आस्ते विष्णुरचिंत्यात्मा भक्तैर्भागवतैस्सह ॥ ५४ ॥
एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः ॥
नागपर्यंकमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरां पुरीम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-सबसे परे वैकुंठ लोकमें लक्ष्मीजीके सहित जगत्पति भक्ति भागवत (वैष्णवों)के सहित अचिंत्य आत्मावाले विष्णु भगवान् हैं सो क्षीरसागरमें आये। क्षीरसागरसे येही श्रीमन्नारायण नागशय्याको छोडकर मथुरामें आये याने श्रीकृष्णचन्द्र जी हुये ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! श्रीभागवतमें और वाल्मीकीय रामायणमें एकही रामावतारकी कथा है कि भिन्न है ?

उत्तर-हे शिष्य ! भागवतमें श्रीमन्नारायण अवतारकी कथा है और वाल्मीकीय रामायणमें दूसरे कल्पकी कथा है।

प्रश्न- हे स्वामी जी ! इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर-हे शिष्य! इसमें यह प्रमाण है कि वाल्मीकीय रामायणमें (दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च) इस प्रमाणसे ग्यारह हजार वर्ष श्रीरामजीने राजकिया है और भागवतके नौमें स्कंधमें लिखा है कि रामजीने १३ हजार वर्ष केवल अग्निहोत्र कियाहै ॥ यथा-

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः ॥
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-जानकी जीके जाने बाद उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी अखण्ड ब्रह्मचर्यको धारण करके तेरह हजार वर्ष तक अग्निहोत्र करते रहे पीछे अपने लोकको गये ॥ ऐसा लिखा है इससे दो कल्पकी कथा है यदि ऐसा न होता तो वचनमें भेद न होता और दोनों ग्रंथ प्रधान हैं ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी! वाल्मीकीय रामायणमें कौन कल्पकी कथा है सो कहिये ?

उत्तर-हे शिष्य ! इस भेदको आगे रामोपासनासिद्धांतमें कहेंगे ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! भागवतमें गोलोकवासी श्रीकृष्ण चरित्र हैं कि नहीं सा कहिये ? ।

उत्तर-हे शिष्य ! इसमें बहुत ही गुप्त भेद परा है भागवतमें गोलोकवासी श्रीकृष्णचन्द्रजीके और वैकुण्ठवासी नारायणके दोनों चरित्र हैं तिसमें गोलोकवासीके चरित्र गुप्त हैं और नारायण चरित्र प्रगट हैं ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! दोनोंके चरित्र क्यों कहा सो कहिये?

उत्तर-हे शिष्य ! इसका कारण यह है कि श्रीनारायण भगवान्के दो स्वरूप हैं एक विहारमूर्ति द्विभुज गोलोकवासी श्रीकृष्णजी हैं दूसरा चतुर्भुज वैकुण्ठवासी सृष्टिकर्ता श्रीमन्नारायण हैं॥ ऐसा आदि पुराणके दशमाध्यायमें भृंगरूप भगवान्ने ब्रह्माजी से कहा है ॥ यथा—

शृणुताहं प्रवक्ष्यामि विष्णो रूपं द्विधा मतम् ॥
नित्यं विहार एकेन चान्येन सृष्टिरेव हि ॥ ५७ ॥
यद्रूपं जगतः स्रष्टुस्तस्य नाभिसमुद्भवम् ॥
पद्मं यतो जन्म तव जगत्स्रष्टुं तथा कुरु ॥ ५८॥

अर्थ—भृंग भगवान ब्रह्माजीसे बोले, कि सुनो मैं कहता हूं विष्णुके दो स्वरूप हैं एक याने कृष्णस्वरूपसे नित्य गोलोकमें विहार करते हैं और दूसरे स्वरूपसे याने नारायण रूपसे सृष्टि करतेहैं ॥ जौन स्वरूपसे संसार रचतेहैं उनके नाभि कमलसे तुम्हारा जन्म हुआ इससे जैसा पूर्वमें रहा तैसे ही सृष्टि करो ॥ हे शिष्य ! इसके आगे विस्तारसे गोलोकादिको वर्णन किया है ऐसे ही ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्णजन्म खंडके ४३ अध्यायमें विष्णु भगवानके वचन शिवजीसे हैं॥यथा—

ममाप्येवं द्विधा रूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम् ॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह ॥ ५९ ॥
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया ॥
द्विविधं ये वदंत्येवं द्वौ प्रधानौ तु तन्मते ॥ ६० ॥

अर्थ-मेरे भी दो स्वरूप हैं द्विभुज और चतुर्भुज तिनमें चतुर्भुज में वैकुंठमें हूं लक्ष्मी पार्षदोंके सहित और गोलोकमें द्विभुज में हूं गोपियों राधिकाके सहित ऐसे जो दो प्रकाके स्वरूप कहतेहैं तिनके मतसे दोनों प्रधान हैं। हे शिष्य! ऐसे ही ६७ अध्यायमें श्रीकृष्णजीने राधिकाजीसे कहाहै। यथा-

वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥
स च विश्वाद्बहिश्चोर्ध्वं यथा गोलोक एव च ॥ ६१ ॥

अर्थ-वैकुंठमें तुम महालक्ष्मी हो हम तहां चतुर्भुज हैं वह वैकुंठ संसारसे बाहर है जैसा गोलोक है ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी! वैकुंठ कहां है? और केतने हैं सो कृपा करके कहिये?

उत्तर-हे शिष्य! सदाशिवसंहितामें पांच वैकुंठ कहेहैं। यथा-

वैकुण्ठपंचकं ख्यातं क्षीराऽब्धिचरमाव्ययम् ॥
कारणं महावैकुण्ठं पंचमं विरजापरम् ॥ ६२ ॥
नित्यं दिव्यमनेकभोगविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरम् ॥
सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी ॥ ६३ ॥

अर्थ-पांच वैकुंठ विख्यात हैं एक क्षीरसागर १ रमावैकुंठ २ कारण वैकुंठ ३ महावैकुंठ ४ पांचवां विरजानदीके पार जहां आदिनारायण रहतेहैं ऐसे ही वेद-सागोपनिषद्में कहाहै यथा-'विरजायाः परे पारे लोको वैकुंठसंज्ञितः' इससे सब वैकुंठके भोग ऐश्वर्य दिव्य हैं नित्य हैं एकसे एक परे हैं इन सब वैकुंठोंके नित्य सच्चिदानन्दके स्वरूपा अयोध्याजी मूल हैं। भाव सब वैकुंठ श्रीअयोध्याजीसे उत्पन्न हुयेहैं इससे गोलोकहीमें वैकुंठ है। हे शिष्य! फिर ब्रह्मवैवर्तपुराणके जन्म-खंडके १२७ अध्यायमें विष्णु वचन है कि "चतुर्भुजोऽहं वैकुंठे द्विधारूपः सनातनः" अर्थात् चतुर्भुज मैं वैकुंठमें हूं द्विभुज गोलोकमें हूं दोनों रूपसनातन हैं। ऐसा ही फिर १२९ अध्यायमें कहा है। यथा-

शुद्धसत्त्वस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव ह ॥
दक्षिणांशश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः ॥ ६४ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥
नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-शुद्धसत्त्वस्वरूपसे दो रूप हुये दक्षिण अंशसे द्विभुज गोपबालक श्रीकृष्णरूप और बायें अंशसे चतुर्भुज स्वयं महालक्ष्मीके पति वैकुंठमें रहे जिन नारायणभगवानके नाम मुक्तिके कारण हैं॥ऐसा ही तहांपर और भी कहा है। यथा-

श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलके द्विभुजः स्वयम् ॥ ६६ ॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मी सरस्वती ॥
गंगा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः ॥ ६७ ॥
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदाधाङ्गसमुद्भवा ॥
तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च ॥ ६८ ॥

अर्थ-श्रीकृष्णजीके दो प्रकारके स्वरूप हैं द्विभुज और चतुर्भुज तिनमें चतु-र्भुज वैकुण्ठमें है द्विभुज स्वयं गोलोलमें है ॥ चतुर्भुज भगवानकी स्त्री महालक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये सब नारायणकी प्रिया हैं ॥ और श्रीकृष्णभगवानकी स्त्री राधिकाजी हैं जब कृष्णजी चतुर्भुज द्विभुज दो स्वरूप हुये तब श्रीकृष्णजीके बायें अंगसे राधिकाजी हुईं जो तेजसे वयससे रूपसे गुणसे कृष्ण तुल्य ही हुईं। हे शिष्य ! ऐसा ही नारदीयपुराणके उत्तर खंडमें ५९ अध्यायमें वसुने मोहनीसे कहा है। यथा-

कदाचित्क्रीडतोर्देवि राधामाधवयोर्वपुः ॥
द्विधाभूतमभूत्तत्र वामांगं वै चतुर्भुजम् ॥ ६९ ॥
समानरूपावयवं समानाम्बरभूषणम् ॥
तद्वद्राधास्वरूपं च द्विधारूपमभूत्सति ॥ ७० ॥
ताभ्यां दृष्टं तत्स्वरूपं साक्षात्तावपि तत्समौ ॥
चतुर्भुजं तु यद्रूपं लक्ष्मीकांतं मनोहरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-वसु बोले मोहनीसे कि हे देवि ! कोई कालमें राधा कृष्ण दोनोंके क्रीडा करतेहुये शरीर दो भाग हो गया तहां वामांग चतुर्भुज होगया ॥ सब शरीर करके भूषण वस्त्र करके बराबर दोनों स्वरूप हुए तैसे ही राधिकाजी भी दो स्वरूप होगई उन दोनोंको कृष्णजीने देखा तो दोनों स्वरूप एकसा साक्षात् कोई भिन्नता नहीं तिनमेंसे चतुर्भुज जो रहे सो तो सुन्दर लक्ष्मीकांत हुए ॥ हे शिष्य ! ऐसे ही बहुत प्रमाण हैं। इससे भगवानके दो स्वरूप हैं और श्रीभागवतमें गुप्त भेदसे दोनों स्वरूपके चरित्र वर्णन कियेहैं सो केवल रसिकजन जानतेहैं दूसरेको यह रहस्य जानना दुर्लभ है।

प्रश्न-हेस्वामी जी ! दोनों स्वरूपोंका चरित्र एक भागवतमें कैसे वर्णन कियाहै सो कृपा करके कहिये मेरेको बहुत संदेह है

उत्तर-हे शिष्य ! संदेहकी बात ही है देखो पद्मपुराणोक्त वृन्दावनके माहात्म्यमें लिखाहै कि गोलोकका विभव वृन्दावनमें है और वैकुण्ठका विभव द्वारका पुरीमें हैं द्विभुज स्वयं कृष्ण वृन्दावनमें विहारादिक लीला करतेहैं और नारायण मथुरासे लेकर द्वारिका पुरीतक लीला करतेहैं इसीसे कहा है कि "वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति" अर्थात् वृन्दावनको छोडकर एक पाँव कहीं नहीं जातेहैं इससे गोलोकवासी सदैव वृंदावनमें रहतेहैं काहेसे कि वृंदावनमें गोलोकके विभव हैं सो वृंदावनके माहात्म्यमें प्रसिद्ध है । यथा-

गोलोकचर्य्यं यत्किंचिद्गोकुलं तत्प्रतिष्ठितम् ॥
वैकुंठादिविभवं यत्तद्वारकायां प्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-गोलोकके जो कुछ विभव हैं सो गोकुलमें प्रतिष्ठित हैं और वैकुंठादिके जो कुछ विभव हैं वह सब द्वारकापुरीमें प्रतिष्ठित हैं, तहां फिर भी कहा है कि "रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधावृन्दावनेवने" अर्थात् रुक्मिणी द्वारकामें राधावृन्दावनमें। भाव रुक्मिणी नारायणकी प्रिया हैं, राधिकाजी कृष्णप्रिया हैं ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! श्रीभागवतमें राधिकाजीके नाम नहीं हैं सो क्यों कहिये ?

उत्तर-हे शिष्य ! भागवतमें भी राधिकाजीके नाम हैं सो आगे कृष्णोपासना सिद्धांतमें कहेंगे ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! नारायणका परत्व और कहिये ? ।

उत्तर-हे शिष्य ! नारायण जो हैं सोई परब्रह्म हैं नारायणही राम कृष्ण दोनों अवतार धारण करते हैं ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! एक नारायण चार स्वरूप कैसे होतेहैं सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य! अगस्त्यसंहिताके ३ अध्यायमें लिखा है कि-

बभूवुरेवं सर्वेऽपि देवर्षिभयशांतये ॥
तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः ॥ ७३ ॥
सर्वलोकोपकाराय भूमौ सोऽयमवातरत् ॥
क्षीराब्धेर्देवदेवोऽसौ लक्ष्मीनारायणो भुवि ॥ ७४ ॥
सशेषः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिस्सह ॥
त्रेतायां च दाशरथिर्भूत्वा नारायणो भुवि ॥ ७५ ॥
शेषोभूल्लक्ष्मणो लक्ष्मीर्जानकी शंखचक्रके ॥
जातौ भरतशत्रुघ्नौ देवास्सर्वेपि वानराः ॥ ७६ ॥

अर्थ-सब देवता ऋषियोंके भय शांतिकरनेके लिये तहां नारायण अयोध्याजीमें श्रीराम ऐसे विख्यात हुये सब लोकोंके उपकारके लिये यह नारायण पृथ्वीमें अवतार लेतेहैं ॥ यह क्षीरसागरके देव लक्ष्मीनारायण पृथ्वीमें शेष शंख चक्रोंके सहित तथा ब्रह्मादि देवतोंके सहित त्रेतायुगमें दाशरथी राम नारायण भये, तहां शेष लक्ष्मणजी हुए लक्ष्मीजी जानकीजी हुई और शंख भरतजी हुये चक्र शत्रुघ्नजी हुये संपूर्ण देवतालोग वानर हुए इससे चारों भाई नित्य चतुर्व्यूह हैं ॥

प्रश्न-हे स्वामीजी ! चतुर्व्यूह किसको कहतेहैं सो कहिये ?।

उत्तर-हे शिष्य ! शास्त्रमें ऐसा कहा है । यथा प्रमाण-

संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥
व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मं संपूर्णषड्गुणम् ॥ ७७ ॥
तदेव वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निगद्यते ॥
अंतर्य्यामी जीवसंस्थो जीवप्रेरक ईरितः ॥ ७८ ॥

अर्थ-संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह चार प्रकारके व्यूह जानना सब सूक्ष्म हैं, षडगुणकरके युक्त हैं, तिनमें वासुदेवसंज्ञा जिनकी है उनको परब्रह्म कहाहैं जो अंतर्य्यामी हैं और सब जीवोंको प्रेरणा करनेवाले कहातेहैं ।:

प्रश्न-हे स्वामी जी! गोलोकवासी कृष्ण चार स्वरूप होकर चतुर्व्यूह कहातेहैं कि नारायण चतुर्व्यूह हैं ? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! गोलोकवासी तो केवल विहार लीला करतेहैं इससे दोई स्वरूप याने राधाकृष्ण युगलकिशोर नित्य हैं इहांपर चतुर्व्यूहका क्या प्रयोजन है चतुर्व्यूह तो केवल सृष्टिके निमित्त हैं सो विष्णुपुराणमें विस्तारसे कहाहै और गोपालतापनी उपनिषद्में भी कहाहै । यथा-

सहोवाचाब्जयोनिश्चतुर्भिर्देवैः कथमेको देवः स्यादेकमक्षरं यद्विश्रुतमनेकाक्षरं कथं भूतं सहोवाच । तं हि वै पूर्वं हि एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत्तस्मादव्यक्तमव्यक्तमेवाक्षरं तस्मादक्षरात् महत्तत्त्वं महतो वै अहंकारस्तस्मादेवाहंकारात् पंचतन्मात्राणि तेभ्यो भूतानि तैरावृतमक्षरं भवति अक्षरोऽहमोंकारोऽहमजरोऽमरोऽभयोऽमृतब्रह्ममयं हि वै स युक्ताऽहमस्म्यक्षरोऽहमस्मि सत्तामात्रं विश्वरूपं प्रकाशं व्यापकमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-ब्रह्मा बोले वासुदेवादि चारदेव एक किस प्रकार हैं और ॐकारनामके एक अक्षरसे किस प्रकार अनेक अक्षर उत्पन्न हुये भगवान् बोले, सृष्टिके पूर्वमें एक अद्वितीय ब्रह्म रहा तिनसे अव्यक्त उत्पन्न हुआ उस अव्यक्त ब्रह्मसेही महत् उत्पन्न हुआ महत्से अहंकार हुआ अहंकारसे पंचतन्मात्रा-शब्द,स्पर्श, रूप,रस,गंध हुआ पंचतन्मात्रासे पंचभूत-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर उत्पन्न हुए, प्रणव (ॐकार) इसके द्वारा वेष्टित हुआ मैं वही अक्षररूप अहंकार अजर अमर अभय और अमृत मय मुक्त मय अविनाशी सत्तामात्र विश्वरूप प्रकाशक और एकमेवाद्वितीय ब्रह्म मायासे चार हुयेहैं ॥

रोहिणी तनयो रामो ह्यकाराक्षरसंभवः ॥
तैजसात्मकप्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भवः ॥ ८० ॥
प्रज्ञात्मकोऽनिरुद्धो वै मकाराक्षरसंभवः ॥
अर्द्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥
कृष्णात्मका जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरुक्मिणी ॥
व्रजस्त्रीजनसंभूतः श्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगतः ॥ ८२ ॥

अर्थ-अकार अक्षरसे रोहिणी नन्दन राम उत्पन्न हुए हैं वह विश्वात्मक अर्थात् जाग्रदवस्थाके अधिष्ठातृ समष्टि स्वरूप हैं । उकार अक्षरसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए हैं वह तैजसात्मक अर्थात् स्वप्नावस्थाके अधिष्ठातृ समष्टि स्वरूप हैं ॥ मकार अक्षरसे अनिरुद्ध हुएहैं वह प्राज्ञ अर्थात् सुषुप्ति अवस्थाके अधिष्ठातृ समष्टि स्वरूप हैं। श्रीकृष्णजी अर्द्धमात्रात्मक तुरीयावस्थाके अधिष्ठातृ हैं तिनमें विश्व प्रतिष्ठित है जगतकी करनेवाली कृष्णात्मिका विद्रुमतिपादिका रुक्मिणी मूल प्रकृति हैं। व्रजस्त्रीजन प्रश्न पूछनमें जो सम्पूर्ण श्रुतियोंकी प्रकाश हो तिससे प्रसिद्ध जो ब्रह्म तिसके प्रकाश वशसे शक्तिरूपा माया और शक्तिमानके अभेदके कारण रुक्मिणी मूल प्रकृति हैं इति ॥ हे शिष्य ! ऐसा ही रामतापनी उपनिषदमें कहाहै यथा-

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ॥
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥ ८३ ॥
प्रज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः ॥
अर्द्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानंदैकविग्रहः ॥ ८४ ॥

अर्थ–अकार अक्षरसे लक्ष्मणजी हुएहैं वह विश्वात्मक हैं। उकार अक्षरसे शत्रुघ्नजी हुएहैं वह स्वप्नावस्थाके साक्षी हैं। मकार अक्षरसे भरतजी हुएहैं जो सुषुप्ति अवस्थाके साक्षीभूत हैं। अर्द्धमात्रात्मक तुरीयावस्थाके साक्षी श्रीरामजी हैं जो ब्रह्मानन्दके स्वरूप हैं। हे शिष्य! जो अर्थ पूर्वोक्त गोपालतापनीके श्रुतिका है वही अर्थ इस श्रुतिका है इससे एक ही सिद्धांत है फिर भी कहा है। यथा रामतापनी उपनिषदि–

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥ ८५ ॥
सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥
प्रणवत्वात्प्रकृतिरितिवदंति ब्रह्मवादिनः ॥ ८६ ॥

अर्थ–श्रीरामजीके संनिधिके वशसे बिन्दुवाच्य श्री जानकीजी हैं जो संसारको आनन्द देनेवाली हैं और सर्वजीवोंको कर्मानुसार उत्पत्ति स्थिति संहार करनेवाली हैं उन सीता भगवतीको मूलप्रकृति जानो और प्रकर्ष करके सृष्टि करनेसे प्रकृति नाम करके वेदवादिऋषि सब कहतेहैं। इससे सृष्टिकेही लिए प्रभुने चतुर्व्यूह रूप धारण कियाहै ताते रामकृष्ण एक हैं लक्ष्मण बलदेव एक हैं भरत प्रद्युम्न एक हैं शत्रुघ्न अनिरुद्ध एक हैं सीता रुक्मिणी एक हैं और नारायण राम हैं शेष लक्ष्मण हैं भरत शंख हैं शत्रुघ्न चक्र हैं लक्ष्मी सीताजी हैं इसी प्रकारसे चतुर्व्यूहके स्वरूप कहेहैं। एही चतुर्व्यूह रामावतार धारण करतेहैं सो नारदीयपुराणके उत्तरखंडके ७९ अध्यायमें कहा है। यथा–

देवो नारायणः साक्षाद्रामो ब्रह्मादिवंदितः ॥
प्रद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनिरुद्धकः ॥ ८७ ॥
लक्ष्मणस्तु महाभागे स्वयं संकर्षणः शिवः ॥
ततः परं ब्रह्मचर्यं यज्ञमेव त्रयोदश ॥ ८८ ॥
सहस्राब्दान्प्रकुर्वाणस्तस्थौ भुवि रघूत्तमः ॥

अर्थ–वसु बोले, मोहनीसे हे भद्रे! साक्षात् नारायण देव ब्रह्मादि करके वंदित श्रीरामजी हैं प्रद्युम्नजी भरतजी हैं शत्रुघ्नजी अनिरुद्धजी हैं और हे महाभाग! लक्ष्मणजी तो स्वयं संकर्षण शिव हैं ॥ तिसके उपरांत ब्रह्मचर्यको धारण करके श्रीरामजीने तेरह हजार वर्ष पृथ्वीपर यज्ञ किया ॥ हे शिष्य! एही तेरह सहस्र वर्ष यज्ञ करना भागवतका सिद्धांत है इसी प्रकारसे नारायण परब्रह्म चतुर्व्यूहोंके

सहित कल्प २ में राम कृष्णादि अवतार धारण कियाकरतेहैं तैसे ही लक्ष्मीजी भी सीता रुक्मिणी आदि स्वरूपोंको धारण कियाकरतीहैं सो विष्णुपुराणके प्रथम अंशमें ९ अध्यायमें कहाहै । यथा-

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ॥
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषा सहायिनी ॥ ८९ ॥

अर्थ-जब विष्णु भगवान् राघवत्वको प्राप्त होतेहैं तब लक्ष्मीजी सीताजी होगई फिर सोई कृष्णजन्ममें रुक्मिणी होतीहैं । जैसे २ भगवान् अवतार धारण करतेहैं तैसे २ ही लक्ष्मी महाराजकी सहायता करती हैं । हे शिष्य ! इसीसे भागवतमें प्रधान रुक्मिणी ही को कहाहै ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! नारायण जब अवतार धारण करतेहैं तब कौन माता पिता होतेहैं ? सो कृपाकरके कहिये ।

(उत्तर) हे शिष्य ! नारायण जब श्रीरामावतार धारण करतेहैं तब कश्यप अदिति दशरथ कौशल्या होतेहैं और जय विजय रावण कुंभकर्ण होतेहैं फिर द्वापरमें जब कृष्णावतार धारण करतेहैं तो कश्यप अदिति वसुदेव देवकी होतेहैं और जय विजय शिशुपाल और दंतवक्र होतेहैं यह सिद्धांत सब शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है और विष्णुअवतारका मुख्य यही सिद्धांत है सो आगे रामोपासना सिद्धांतमें कहेंगे ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! गोलोकवासी जब अवतार धारण करतेहैं तब माता पिता कौन होतेहैं और शिशुपाल दंतवक्र कौन होतेहैं सो कहिये ?

उत्तर-हे शिष्य ! गोलोकवासी कृष्णके भी माता पिता कश्यप ही अदिति होतेहैं और जय विजय यही शिशुपाल दंतवक्र होतेहैं ॥ यथा-भागवते७स्कंध१अध्याये

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववंदितौ ॥
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ९० ॥
हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ॥
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥ ९१ ॥

अर्थ-यह दोनों द्वारपाल जय और विजय मृत्युलोकमें आनकर दैत्यदानवोंके परम पूज्य कश्यप मुनिकी स्त्री दितिके पुत्र हुये जिनमें ज्येष्ठपुत्र हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष हुआ ॥ इनकी अनीति देख हरिने नृसिंह अवतार धारणकर हिरण्यकशिपुको मारा और पृथिवीके उद्धार करनेके समयमें वाराह अवतार धारणकर हिरण्याक्षका वध किया ॥

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवस्सुतौ ॥
रावणः कुंभकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ९२ ॥
तत्रापि राघवो भूत्वान्यहनच्छापमुक्तये ॥
रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात्प्रभो ॥ ९३ ॥
तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ॥
अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ९४ ॥

अर्थ-फिर उन दोनों पार्षदोंने विश्रवाऋषिकी भार्या केशिनीमें जन्मलिया और रावण कुंभकर्ण नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुये और अपने बाहुबलसे तीनोंलोकोंको जीत देवताओंको भयभीत करदिया । उस समय भी श्रीनारायणने राजादशरथकी पत्नी कौसल्यामें रामचन्द्र अवतार लेकर शाप मोचन करनेके लिये लंकामें जाकर दोनोंका वध किया । हे प्रभो ! मार्कण्डेयके मुखसे आप राम चरित्र सुनोगे । उनदोनों अब तीसरी वार क्षत्रिय वंशमें जन्मले तुम्हारी माताकी भगिनीके पुत्र शिशुपाल और दंतवक्र नामसे विख्यात हुये उनको श्रीद्वारकानाथने चक्र सुदर्शनसे मार निष्पापकर सनकादिकके शापसे मुक्त करदिया । हे शिष्य ! ऐसे ही कृष्णोपासकोंके परमश्रेष्ठ ग्रंथ ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्म खण्डके ५६ अध्यायमें कहाहै । यथा-

जयस्य विजयस्यापि दर्पभंगं चकार सः ॥
वैकुंठात्पतितस्यापि ब्रह्मशापाच्छलेन च ॥ ९५ ॥
नृसिंहेन हतः सोऽपि हिरण्यकश्यपुर्यथा ॥
सूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले ॥ ९६ ॥
रावणः कुंभकर्णश्च निहतौ रामबाणतः ॥
जन्मांतरे च लंकायां ब्रह्मणा प्रार्थितस्य च ॥ ९७ ॥
शिशुपालो हि निहतः कृष्णबाणेन लीलया ॥
दंतवक्रश्च सहसा परिपूर्णोऽत्र जन्मनि ॥ ९८ ॥

अर्थ-जय विजयका भी प्रभुने मानभंग किया सनकादिकके शाप छलकरके वैकुंठसे गिरादिया और हिरण्यकशिपु भया सो भी नृसिंहजी करके मारागया जैसेही वाराह अवतार होकरके हिरण्याक्षको पातालमें लीलासे मारें । फिर जन्मांतरमें लंकापु-

रीमें ब्रह्माजीके प्रार्थनासे रावण और कुंभकर्ण दोनों मारे गये सोई फिर शिशुपाल और दंतवक्र श्रीकृष्णजीके बाणसे शीघ्र लीलापूर्वक दोनों मारे गये । इस जन्ममें सनकादिकजीके शापपूर्णहोगये फिर वैकुंठमें जाकर पूर्ववत जय विजय होगये ॥ भागवते १० स्कंधे ३ अध्याये-

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ९९ ॥
तृतीयेऽस्मिन्भवेहं वै तेनैव वपुषा युवाम् ॥
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ १०० ॥

अर्थ-भगवान् बोले कि प्रथम हम आप दोनोंमें पृश्निगर्भ नामसे विख्यात हुए फिर आप दोनों कश्यप अदिति हुए तिनसे हम उपेंद्रनाम करके विख्यात हुए और वामन होनेसे वामननाम भया अब तृतीयजन्ममें तुम दोनों वसुदेव देवकी हुए हो हम उसी शरीरसे तुम दोनोंसे हुए हैं। हे सति ! मेरा प्रमाण सत्य है जो कहा रहा सो पूरा हुआ इससे हम जन्म धारणकियाहै हे शिष्य ! ऐसा ही ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखंडके ७ अध्यायमें कहाहै । यथा-

पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः ॥
पत्नी ते पृश्निनाम्नी च तपसाराधितस्त्वया ॥ १०१ ॥
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा मां च वृतो बुधः ॥
मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः ॥ १०२ ॥
तपसां च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् ॥
सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥ १०३ ॥
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवपिता मम ॥
देवकी देवमातेयमदितेरंशसंभवा ॥ १०४ ॥
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेंशेन संभवः ॥
अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसां फलात् ॥ १०५ ॥

अर्थ-वसुदेवजीसे भगवान् बोले, किपूर्वकालमें तपस्वियोंमें श्रेष्ठ तुम सुतपा नाम प्रजापति रहे तुम्हारी स्त्री पृश्निगर्भा रहीसो तप करके मेरा आराधन किया तुमने तब मेरेको देखकर तहां मेरे समान पुत्र मांगा मैंने वर दिया तुमको कि मेरे समान सुत होगा ॥ तपके प्रभाव करके तुम स्वयं कश्यप हो और यह देवमाता अदिति पतिव्रता है इस कालमें कश्यपके अंशसे आप वसुदेव नाम हमारे पिता

और यह देवकी माता देवमाता अदितिके अंशसे उत्पन्न हुई हैं। आपसे अदितिके गर्भमें अंश करके वामन नाम वाला मैं पुत्र उत्पन्न हुआ हूं इस काल परिपूर्ण होकर मैं पुत्र हुआहूं तपके फलसे। हे शिष्य! परम उपासक गर्गाचार्यका भी यही सिद्धांत है कि "कश्यपो वसुदेवश्चदेवकी चादितिः परा" अर्थात् कश्यपजी वसुदेव हैं और अदितिजी देवकी हैं। हे शिष्य! पद्मपुराण सृष्टिखण्डके १३ अध्यायमें भीष्मजीने पुलस्त्यजी से पूछा है। यथा–

क एप वसुदेवस्तु देवकी का यशस्विनी ॥
नंदगोपश्च कश्चैव यशोदा का महाव्रता ॥ १०६ ॥
या विष्णुं पोपयामास यां स मातेत्यभापत ॥
यां गर्भं जनयामास या चैनं समवर्द्धयत् ॥ १०७ ॥

अर्थ–भीष्मजी बोले कि यह वसुदेव को हैं और यशस्विनी देवकी को हैं नन्दगोप को हैं और यशोदा महाव्रता को हैं। जिन्होंने विष्णु भगवान्को पुत्रभावसे पालन किया और जिनको वह परमात्मा माता ऐसा कहकर बोले, जिन्होंने गर्भमें धारण किया और जिन्होंने सब प्रकारसे पोपण पालन किया ॥ पुलस्त्यजी बोले ॥

पुरुपः कश्यपश्चासावदितिस्तत्प्रिया स्मृता ॥
कश्यपो ब्रह्मणोंशस्तु पृथिव्या अदितिस्तथा ॥
नंदो द्रोणस्समाख्यातो यशोदाथ धराभवत् ॥ १०८ ॥

अर्थ–कश्यपजी तिनकी प्रिया अदिति सोई वसुदेव और देवकी हैं और कश्यपजी ब्रह्माजीके अंश हैं और पृथ्वी अदिति हैं नंदजी द्रोण हैं धरा यशोदाजी हैं ॥ हे शिष्य! कहांतक कहें थोरहीमें जानलो; कश्यप अदितिको छोडकर दुसरा कोई नहीं वसुदेव देवकी होतेहैं, नारायण अवतारका मुख्य यही सिद्धांत है इससे नारायण सर्वोपरि हैं सब छोडकर श्रीमन्नारायणकी उपासना करनी चाहिये। यथा–नारद्-पंच रात्रे ३ रात्रे ९ अध्याये–

सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिविनाशनः ॥
ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः ॥ १०९ ॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शंभुकोटिमहेश्वरः ॥
कुवेरकोटिलक्ष्मीवाञ्छत्रुकोटिविनाशनः ॥ ११० ॥

रीमें ब्रह्माजीके प्रार्थनासे रावण और कुंभकर्ण दोनों मारे गये सोई फिर शिशुपाल और दंतवक्र श्रीकृष्णजीके बाणसे शीघ्र लीलापूर्वक दोनों मारे गये। इस जन्ममें सनकादिकजीके शापपूर्णहोगये फिर वैकुंठमें जाकर पूर्ववत जय विजय होगये॥ भागवते १० स्कंधे ३ अध्याये-

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ९९ ॥
तृतीयेऽस्मिन्भवेहं वै तेनैव वपुषा युवाम् ॥
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ १०० ॥

अर्थ-भगवान् बोले कि प्रथम हम आप दोनोंमें पृश्निगर्भ नामसे विख्यात हुए फिर आप दोनों कश्यप अदिति हुए तिनसे हम उपेंद्रनाम करके विख्यात हुए और वामन होनेसे वामननाम भया अब तृतीयजन्ममें तुम दोनों वसुदेव देवकी हुए हो हम उसी शरीरसे तुम दोनोंसे हुए हैं। हे सति ! मेरा प्रमाण सत्य है जो कहा रहा सो पूरा हुआ इससे हम जन्म धारणकियाहै हे शिष्य ! ऐसा ही ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखंडके ७ अध्यायमें कहाहै। यथा-

पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः ॥
पत्नी ते पृश्निनाम्नी च तपसाराधितस्त्वया ॥ १०१ ॥
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा मां च वृतो बुधः ॥
मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः ॥ १०२ ॥
तपसां च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् ॥
सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥ १०३ ॥
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवपिता मम ॥
देवकी देवमातेयमदितेरंशसंभवा ॥ १०४ ॥
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेंशेन संभवः ॥
अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसां फलात् ॥ १०५ ॥

अर्थ-वसुदेवजीसे भगवान् बोले, कि पूर्वकालमें तपस्वियोंमें श्रेष्ठ तुम सुतपा नाम प्रजापति रहे तुम्हारी स्त्री पृश्निगर्भा रही सो तप करके मेरा आराधन किया तुमने तब मेरेको देखकर तहां मेरे समान पुत्र मांगा मैंने वर दिया तुमको कि मेरे समान सुत होगा॥ तपके प्रभाव करके तुम स्वयं कश्यप हो और यह देवमाता अदिति पतिव्रता है इस कालमें कश्यपके अंशसे आप वसुदेव नाम हमारे पिता

और यह देवकी माता देवमाता अदितिके अंशसे उत्पन्न हुई हैं। आपसे अदितिके गर्भमें अंश करके वामन नाम वाला मैं पुत्र उत्पन्न हुआ हूं इस काल परिपूर्ण होकर मैं पुत्र हुआहूं तपके फलसे। हे शिष्य! परम उपासक गर्गाचार्यका भी यही सिद्धांत है कि "कश्यपो वसुदेवश्चदेवकी चादितिः परा" अर्थात् कश्यपजी वसुदेव हैं और अदितिजी देवकी हैं। हे शिष्य! पद्मपुराण सृष्टिखण्डके १३ अध्यायमें भीष्मजीने पुलस्त्यजी से बूझा है। यथा–

क एष वसुदेवस्तु देवकी का यशस्विनी॥
नंदगोपश्च कश्चैव यशोदा का महाव्रता॥ १०६॥
या विष्णुं पोषयामास यां स मातेत्यभाषत॥
या गर्भं जनयामास या चैनं समवर्द्धयत्॥ १०७॥

अर्थ–भीष्मजी बोले कि यह वसुदेव को हैं और यशस्विनी देवकी को हैं नन्दगोप को हैं और यशोदा महाव्रता को हैं। जिन्होंने विष्णु भगवान्को पुत्रभावसे पालन किया और जिनको वह परमात्मा माता ऐसा कहकर बोले, जिन्होंने गर्भमें धारण किया और जिन्होंने सब प्रकारसे पोषण पालन किया॥ पुलस्त्यजी बोले॥

पुरुषः कश्यपश्चासावदितिस्तत्प्रिया स्मृता॥
कश्यपो ब्रह्मणोंशस्तु पृथिव्या अदितिस्तथा॥
नंदो द्रोणस्समाख्यातो यशोदाथ धराभवत्॥ १०८॥

अर्थ–कश्यपजी तिनकी प्रिया अदिति सोई वसुदेव और देवकी हैं और कश्यपजी ब्रह्माजीके अंश हैं और पृथ्वी अदिति हैं नंदजी द्रोण हैं धरा यशोदाजी हैं॥ हे शिष्य! कहांतक कहें थोरहीमें जानलो; कश्यप अदितिको छोडकर दुसरा कोई नहीं वसुदेव देवकी होवेंहैं, नारायण अवतारका मुख्य यही सिद्धांत है इससे नारायण सर्वोपरि हैं सब छोडकर श्रीमन्नारायणकी उपासना करनी चाहिये। यथा–नारदपंच रात्रे ३ रात्रे ९ अध्याये–

सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिविनाशनः॥
ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः॥ १०९॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शंभुकोटिमहेश्वरः॥
कुबेरकोटिलक्ष्मीवाञ्छत्रुकोटिविनाशनः॥ ११०॥

कंदर्पकोटिलावण्यो दुर्गकोटिविमर्द्दनः ॥
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः ॥ १११ ॥
हिमवत्कोटिनिष्कंपः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ॥
कोटयश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः ॥ ११२ ॥
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः ॥
ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ॥ ११३ ॥

अर्थ-कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान् हैं, कोटि यमराजके समान विनाश करनेवाले हैं, कोटि ब्रह्माके समान सृष्टिकरनेवाले हैं, कोटि वायुके समान महाबली हैं, कोटि चंद्रमाके समान संसारको आनंद देनेवाले हैं, कोटि महादेवके समान संहारकरनेमें समर्थ हैं, कोटि कुबेरके समान धनवान् हैं, कोटि शत्रुके समान नाश करनेवाले हैं, कोटि कामके समान सुंदर हैं, कोटि दुर्गाके समान दुष्टोंको विमर्दन करनेवाले हैं, कोटि समुद्रके समान प्रभु गंभीर हैं, कोटि तीर्थके समान पवित्र हैं, कोटि हिमाचलके समान अचल हैं, कोटि ब्रह्माण्डके स्वरूप हैं, कोटि अश्वमेधयज्ञके समान ब्रह्महत्याको नाशकरनेवाले हैं, कोटि यज्ञके समान पूजने योग्य हैं, कोटि सुधा (अमृत) के समान स्थिरकरने वाले हैं, कोटि कामधेनुके समान कामनाओंके देनेवाले हैं, कोटि ब्रह्मविद्या (ज्ञान) के समान हैं, ऐसे सर्वव्यापी श्रीनारायण हैं नारायणसे परे कुछ नहीं है ॥

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवश्रीसरयूदासेन विरचिते उपासनात्रयसिद्धान्ते गुरु-शिष्यसंवादे श्रीमन्नारायणोपासनासिद्धांतसारसंग्रहः समाप्तः ॥

श्रीराधावल्लभो विजयते सदा ॥

॥ अथ श्रीकृष्णोपासनासिद्धांतप्रारंभः ॥

(श्लोकाः)

कोटिकंदर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥
चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम ॥ १ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वंदितं स्तुतम् ॥
किशोरं राधिकाकांतं गोलोकेशं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

अर्थ-कोटि कामके समान सुंदर हैं और मनोहरलीलाके स्थान हैं, असंख्य चंद्रमाके से प्रभा करके युक्त हैं, वडे पुष्ट श्री (कांति) युक्त जिनके स्वरूप हैं ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि ६३ कोटि देवता करके पूजन, वंदन, स्तुति कियेजातेहैं और किशोर नाम षोडश वर्षकी नित्य जिनकी अवस्था है और श्रीराधिकाजीके स्वामी हैं ऐसे गोलोकधामके पति श्रीकृष्णाचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! श्रीमन्नारायणउपासनासिद्धांत तो आपकी कृपासे सुना अब आप कृपाकरके श्रीकृष्णचन्द आनंदकंद विहारीजीका उपासनासिद्धांत कहिये मेरेको सुनवेकी वहुत ही इच्छा है।

उत्तर-हे शिष्य ! श्रीकृष्णचन्द्रजीका उपासना सिद्धांत सर्वोपरि है और जैसा शास्त्रके व श्रीकृष्णोपासकोंका परम सिद्धांत है सो कहतेहैं तुम सावधान होकर सुनो। हे शिष्य! कृष्णउपासकोंमें परम श्रेष्ठ प्रथम श्रीगर्गाचार्यजी हैं इनसे विशेष कोई दूसरा होना दुर्लभ है सो श्रीगर्गाचार्यजी (गर्गसंहिता) के प्रथम गोलोकखण्डमें राजा वहुलाश्वने श्रीनारदजीसे बूझा है। कि-

कतिधा श्रीहरेर्विष्णोरवतारो भवत्ययम् ॥
साधूनां रक्षणार्थं हि कृपया वद मां प्रभो ॥ १ ॥

अर्थ-राजा बोले कि हे प्रभो ! श्रीहरि विष्णुभगवान्के यह अवतार साधुओंके रक्षार्थ कितने होतेहैं सो कृपाकरके मेरेको कहिये। यह वचन राजाके सुनकर श्रीनारदजी बोले ॥

अंशांशांशस्तथावेशः कलापूर्णः प्रकथ्यते ॥
व्यासाद्यैश्च स्मृतः कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥ २ ॥

अंशांशस्तु मरीच्यादिरंशा ब्रह्मादयस्तथा ॥
कलाः कपिलकूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः ॥ ३ ॥
पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः ॥
वैकुंठोऽपि तथा यज्ञो नरनारायणः स्मृतः ॥ ४ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥ ५ ॥

अर्थ-अंशांश तथा आवेश कलापूर्ण कहाहै और कृष्णजी परिपूर्णतम स्वयं ब्रह्म हैं ऐसा व्यासादिकमुनियोंने कहा है। तिनमें मरीचिआदि अंशांश हैं, ब्रह्मादिक अंश हैं और कपिलकूर्मादिक भगवतके कला अवतार हैं, परशुरामादिक आवेशावतार हैं॥ नृसिंह राम और श्वेतद्वीपके वासी भगवान् तथा वैकुंठवासी भी और यज्ञावतार नर नारायण यह सब पूर्णावतार हैं और परिपूर्णतम साक्षात् कृष्णभगवान् स्वयं हैं जो कि कोटि ब्रह्माण्डके पति हैं और सर्वोपरि गोलोकधाममें विराजतेहैं॥

कार्याधिकारं कुर्वन्तः सदंशास्ते प्रकीर्तिताः ॥
तत्कार्यभारं कुर्वन्तस्तेंऽशांशा विदिताः प्रभो ॥ ६ ॥
येषामन्तर्गतो विष्णुः कार्यं कृत्वा विनिर्गतः ॥
नानाऽवेशावतारांश्च विद्धि राजन्महामते ॥ ७ ॥
धर्मं विज्ञाय कृत्वा यः पुनरंतरधीयत ॥
युगेयुगे वर्तमानः सोऽवतारः कला हरेः ॥ ८ ॥
चतुर्व्यूहो भवेद्यत्र दृश्यंते च रसा नव ॥
अतः परं च वीर्य्याणि स तु पूर्णः प्रकथ्यते ॥ ९ ॥

अर्थ-योग्यकार्यको करतेहैं वह सब सदंश कहे हैं और उत्पत्ति पालन संहारादि कार्यको जो करतेहैं वह सब अशांश करके प्रसिद्ध हैं। जिनके भीतरमें विष्णुभगवान् प्रवेश होकर कार्य करके पुनः निकल जातेहैं वह नाना प्रकारके आवेशावतारहैं तिनको हे राजन् महामते!! जानो। धर्मको विदित करनेके लिये जो अवतार लेतेहैं और धर्म विदित करके जो अंतर्ध्यान होजातेहैं और युग युगमे जा वर्तमान हैं सो भगवान्के कलावतारहैं॥ और जहां चतुर्व्यूह हो याने चार स्वरूप हो जैसे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इति और शृंगार १ हास्य २ करुणा ३ रौद्र ४ अद्भुत ५

बीभत्स ६ भयानक ७ वीर ८ शांत ९ यह नव रस जहांपर देखपरें और भी इससे पराक्रम सब देखपरें उसे पूर्ण अवतार कहतेहैं ।

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि ॥
तं वदंति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम् ॥ १० ॥
पूर्णस्य लक्षणं यत्र यं पश्यंति पृथक् पृथक् ॥
भावेनापि जनाः सोऽयं परिपूर्णतमः स्वयम् ॥ ११ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि ॥
एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥ १२ ॥

अर्थ-जिसमें संपूर्ण तेज अपने तेजमें लीन होजातेहैं उनको साक्षात्परब्रह्म परिपूर्णतम स्वयं कहतेहैं ॥ पूर्णका लक्षण जहां जिनको भिन्न २ देखतेहैं भावकरके सो यह परिपूर्णतम साक्षात्स्वयं ब्रह्म हैं ॥ परिपूर्णतम साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं दूसरा नहीं, काहेसे कि एक कार्यके लिये आतेहैं कोटि कार्यको करतेहैं यही परिपूर्णतमके लक्षण हैं ।

प्रश्न- हे स्वामी जी ! जहां चतुर्व्यूह देखनेमें आतेहैं सो पूर्णावतार है ऐसा कहा है प्रथम तो इसमें यह संदेह है कि चतुर्व्यूह तो कृष्णावतारमें भी देखतेहैं फिर परिपूर्णतम कैसे भया पूर्ण ही सिद्ध होताहै ॥

उत्तर- हे शिष्य ! इस भेदको पूर्वही नारायण उपासनासिद्धांतमें कहा, कि नारायण अवतार जो कृष्ण होतेहैं उनमें चतुर्व्यूह होतेहैं कुछ गोलोकवासी नहीं हैं, गोलोकवासी तो नित्य युगलकिशोर ही प्रमाण हैं इससे संदेह करना वृथा है । हे शिष्य ! ऐसा ही ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्डके ९ अध्यायमें नारायणके वचन नारदजीसे हैं । यथा-

सूकरो वामनः कल्की बौद्धः कपिलमीनकौ ॥
एते चांशाः कलाश्चान्ये संत्येव कतिधा मुने ॥ १३ ॥
कूर्मो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराड् विभुः ॥
परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुंठे गोकुले स्वयम् ॥ १४ ॥
वैकुंठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः ॥
गोलोके गोकुले राधाकांतोऽयं द्विभुजः स्वयम् ॥ १५ ॥

अर्थ-वाराह, वामन, कल्की, बौद्ध, कपिल, मत्स्य, कच्छप ये सब अंश और कलावतार हैं और भी केतने ही अंश कला हैं। और कूर्म, नरसिंह, राम, श्वेत द्वीपवासी, विराट् प्रभु ये सब पूर्ण हैं और वैकुंठमें गोकुल (गोलोक) में परिपूर्णतम स्वयं कृष्ण हैं। वैकुंठमें श्रीकृष्ण जो रूपभेदसे लक्ष्मीकांत श्रीमन्नारायण चतुर्भुज हैं और गोकुलमें तथा गोलोकमें राधाकान्त यह स्वयं द्विभुज कृष्ण हैं। भाव नारायण और कृष्ण दोनों एक ही हैं केवल रूप करके भिन्न २ हैं सो पूर्व ही नारायणउपासनासिद्धांतमें विस्तारसे कहिआये हैं। हे शिष्य! नारदीय पुराण उत्तरखंडके ५८ अध्यायमें भी ऐसेही कहाहै। यथा-

देवि सर्वेऽवतारास्तु ब्रह्मणः कृष्णरूपिणः ॥
अवतारी स्वयं कृष्णः सगुणो निर्गुणः स्वयम् ॥ १६ ॥
स एव रामः कृष्णश्च वस्तुतो गुणतः पृथक् ॥
सर्वे प्राकृतिका लोका गोलोको निर्गुणः स्वयम् ॥ १७ ॥

अर्थ-वसु बोले मोहनीसे कि हे देवि! भगवतके सब अवतार कृष्णस्वरूप ही हैं और श्रीकृष्णजो स्वयं अवतारी हैं तथा सगुण और निर्गुण स्वयं कृष्णही हैं। वही बलराम और कृष्ण दोऊ हैं गुण करके भिन्न हैं और सब लोक प्राकृत हैं याने मायाकृत नाशमान हैं और गोलोक निर्गुण है अर्थात् मायासे रहित है ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी! गोलोक कहांहै सो कहिये?।

उत्तर-हे शिष्य! गोलोक ब्रह्माण्डके ऊपर है ऐसा गर्गाचार्य्यका सिद्धांत है। और ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्डके द्वितीयाध्यायमें ऐसा कहा है। यथा-

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद्द्विज ॥
त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृतिम् ॥ १८ ॥
तदधो दक्षिणे सव्ये पंचाशत्कोटियोजनात् ॥
वैकुंठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम् ॥ १९ ॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुंठं मण्डलाकृति ॥
लये शून्यं च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥ २० ॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्यादिवर्जितम् ॥
सव्ये च शिवलोकं च कोटियोजनविस्तृतम् ॥ २१ ॥
लये शून्यं च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम् ॥
गोलोकाभ्यंतरे ज्योतिरतीव सुमनोहरम् ॥ २२ ॥

अर्थ–सौतिजीके वचन शौनकजीसे हैं कि पूर्वकाल प्रलयमें कोटि सूर्यके समान ज्योतिसमूह रहा जिससे कि कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होतेहैं उसी ज्योतिके भीतर तीन लोक अति सुंदर हैं तिन सबके ऊपर हे द्विजवर! नित्य गोलोक धाम ईश्वरके तुल्य याने सच्चिदानंद स्वरूप विराजितहै जो तीन कोटि योजन विस्तारहै और मण्डलाकार (गोलाकार) है जहां रत्नमय भूमिहै बडे बडे योगियोंको देख नहीं परतीहै। केवल वैष्णवोंको देख परतीहै। जहां आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु, शोक, भय कुछ नहीं है जहां दिव्य रतनों करके रचित कोटिन दिव्य मंदिर शोभित हैं जहां कोटिन गोप गोपिनके सहित श्रीराधाकृष्ण विराजतेहैं उसी गोलोकके नीचे ५० कोटि योजनपर दक्षिण और बायें ओर वैकुण्ठ और शिवलोक दोनों एकसे सुन्दर विराजतेहैं तिनमें वैकुण्ठ एक कोटि योजनका गोलाकार विस्तार है जहां लक्ष्मी नारायण चतुर्भुज पार्षदोंके सहित विराजतेहैं जहां जरा मरण नहीं है वहींसे संसारका उत्पत्ति, पालन, संहार होता है। सो वैकुण्ठ गोलोकसे दक्षिण है और बायीं ओर याने गोलोकके उत्तर ओर शिवलोक है, सो भी एक कोटि योजनका विस्तार है जहां पर पार्वती पार्षदोंके सहित संसारके कर्ता स्वयं योगिराज शिवजी विराजतेहैं उसी गोलोकके भीतर परमानन्दके देने वाली परम सुन्दर ज्योति है उसी ज्योतिको सदा योगीलोग ध्यान करतेहैं उसीको निराकार कहतेहैं वही ज्योतिके भीतर बडे विलक्षण श्यामसुन्दर कोटि कंदर्पसे लावण्य द्विभुज, मुरलीहस्त, श्रीकृष्णचन्द्रजी आनंदकन्द भक्तहितकारी विराजतेहैं ऐसा गोलोक है ॥

प्रश्न–हे स्वामी जी! श्रीभागवतमें गोलोक और विरजा नदीके नाम हैं कि नहीं सो कृपा करके कहिये ? ।

उत्तर–हे शिष्य! श्रीभागवतमें सबका वर्णन है जो भागवतमें नहीं है सो कहीं भी नहीं है। यथा–३ स्कन्धे १५ अध्याये–

> यत्र चाऽऽद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः ॥
> सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥ २३ ॥

अर्थ–जिस वैकुंठके सब पुरुष विष्णुस्वरूप हैं सब कोई केवल नारायणका पूजन करतेहैं जिस वैकुण्ठलोकमें आदि पुरुष शब्दमात्रके वक्ता श्रीविष्णुनारायण विराजतेहैं शुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारण किये विरजा नदीके तीर अपने पार्षदोंको सदा सुख देतेहैं। इति। फिर भी दशमस्कन्धपूर्वार्द्ध २८ अध्यायमें श्रीशुकाचार्यजीके वचन हैं यथा–

> गोवर्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥
> गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ २४ ॥

अर्थ-जब गोवर्धन पर्वत धारण कर महा घोर वर्षासे महाराजने व्रजकी रक्षा करी तब गोविंदाभिषेक करनेके लिए गोलोकसे गौ और राजा इन्द्र आये हैं। इससे भागवतमें भी गोलोक और विरजाके वर्णन हैं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! सर्व तेज कैसे श्रीकृष्ण भगवानमें लीन होतेहैं सो कहिये ॥

उत्तर-हे शिष्य ! गर्गसंहिताके गोलोकखण्डमें ऐसा लिखा है। यथा-

सर्वेषां पश्यतां तेषां वैकुंठोऽपि हरिस्ततः ॥
उत्थायाष्टभुजः साक्षाल्लीनोभूत्कृष्णविग्रहे ॥ २५ ॥
तदैव चागतः पूर्णो नृसिंहश्चण्डविक्रमः ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशो लीनोऽभूत्कृष्णतेजसि ॥ २६ ॥
रथे लक्षहये शुभ्रे स्थितश्चागतवांस्ततः ॥
श्वेतद्वीपाधिपो भूमा सहस्रभुजमंडितः ॥ २७ ॥
श्रिया युक्तः स्वायुधाढ्यः पार्षदैः परिसेवितः ॥
संप्रलीनो बभूवाशु सोपि श्रीकृष्णविग्रहे ॥ २८ ॥

अर्थ-जिस समयमें सब देवता मिलकर गोलोक गये हैं उस समयमें सब देवताओंके देखते हुए वैकुंठवासी अष्टभुज हरि भगवान् आये और श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें लीन होगये फिर पूर्णावतार बड़े पराक्रमी श्रीनृसिंहभगवान् कोटि सूर्यके समान प्रकाश है जिनका सो भी आकर श्रीकृष्णजीके तेजमें लीन होगये ॥ तिसके उपरांत लक्ष श्वेत घोड़ों करके युक्त दिव्यरथमें बैठकर श्वेतद्वीपके स्वामी भूमापुरुष सहस्र भुजवाले आये और लक्ष्मीजीके सहित सब पार्षदों करके सेवि श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें शीघ्र लीन होगये।

तदैव चागतः साक्षाद्रामो राजीवलोचनः ॥
धनुर्बाणधरः सीताशोभितो भ्रातृभिर्वृतः ॥ २९ ॥
दशकोटयर्कसंकाशे चामरैर्दोलिते रथे ॥
असंख्यवानरेन्द्राढ्ये लक्षचक्रवनस्वने ॥ ३० ॥
लक्षध्वजे लक्षहये शातकौंभे स्थितस्ततः ॥
श्रीकृष्णविग्रहे पूर्णः संप्रलीनो बभूव ह ॥ ३१ ॥
तदैव चागतः साक्षाद्यज्ञो नारायणो हरिः ॥
प्रस्फुरत्प्रलयाटोपज्वलदग्निशिखोपमः ॥ ३२ ॥

रथे ज्योतिर्मये हश्यो दक्षिणाढ्यः सुरेश्वरः ॥
सोपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामविग्रहे ॥ ३३ ॥

अर्थ-उसी ही समय साक्षात् श्रीरामजी आये जिनके कमलसे नयन हैं धनुर्बाण धारण किये हैं और श्रीसीताजी भरत लक्ष्मण शत्रुहन करके शोभित हैं । दश कोटि सूर्यके समान जिनकी कान्ति है रथमें चांवर डोल रहा है, असंख्य वानर श्रेष्ठ करके युक्त हैं एक लक्ष जिस रथमें चक्र हैं ॥ लक्ष ध्वजा लक्ष घोड़ों करके युक्त हैं ऐसे दिव्य शतकुंभवाले रथमें बैठेहैं वह पूर्णावतार श्रीरामजी श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें लीन होगये तैसेही साक्षात् यज्ञनारायण हरि आये जिनका तेज अग्नि शिखाकें तुल्य है वड़े जाज्वल्यरथमें बैठे जिनके दक्षिणकी ओर इन्द्र हैं वह वामन भी शीघ्र श्रीकृष्णजीके श्यामस्वरूपमें लीन होगये ॥

तदा चागतवान्साक्षान्नरनारायणः प्रभुः ॥
चतुर्भुजो विशालाक्षो मुनिवेषघनद्युतिः ॥ ३४ ॥
तडित्कोटिजटाजूटः प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलः ॥
मुनीन्द्रमण्डलैर्दिव्यैर्मंडितोऽखण्डितव्रतः ॥ ३५ ॥
सर्वेषां पश्यतां तेषामाश्चर्य्यम्मनसा नृप ॥
सोपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामसुंदरे ॥ ३६ ॥
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं च स्वयं प्रभुम् ॥
ज्ञात्वा देवाः स्तुतिं चक्रुः परं विस्मयमागताः ॥ ३७ ॥

अर्थ-तब साक्षात् नर और नारायण प्रभु आये चार भुजा हैं विशाल नेत्र मुनिवेष धारण किये हैं मेघकीसी जिनकी कांति है। कोटि विद्युतसे जटाजूटको धारण किये हैं चारों ओर प्रकाश कर रहेहैं वडे २ मुनियों करके युक्त हैं अखण्ड जिनका व्रत है हे राजन् ! सब देवताओंके देखते आश्चर्य पूर्वक सोभी श्रीकृष्णजीके श्यामसुंदर शरीरमें लीन होगये । इस प्रकारके साक्षात्परिपूर्णतम स्वयं श्रीकृष्णभगवान्को जानकर सब देवतालोग आश्चर्य मानकर स्तुति करते भये॥ हे शिष्य! ऐसा सिद्धांतमत गर्गाचार्यका है, ऐसा ही ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्डके ६ अध्यायमें कहा है यथा-

गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे ॥
दृष्ट्वा च परमाश्चर्य्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र शातकुंभमयाद्रथात् ॥
अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥ ३९ ॥
आजगाम चतुर्बाहुर्वनमालाविभूषितः ॥
पीताम्बरधरः श्रीमान् सस्मितः सुमनोहरः ॥ ४० ॥
सर्वालंकारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥
उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः प्रणता मुने ॥ ४१ ॥
स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे ॥
ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयं परमं ययुः ॥ ४२ ॥

अर्थ-नारायण बोले हे मुने ! श्रीनारायणदेव जाकरके श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें लीन होगये यह देखकर देवता सब आश्चर्यको प्राप्त होते भये एतने ही अंदरमें तहां शातकुंभमय रथसे उतरके स्वयं विष्णु जगत्के स्वामी आये चार भुजा हैं जिनको और वनमाला करके भूपित हैं । पीतांबर धारण किये हैं ऐश्वर्य कांति युक्त हैं बडे सुंदर हँसते हुए । संपूर्ण भूषण करिके शोभा युक्त कोटि सूर्यके समान प्रकाश है जिनका सो कृष्णभगवान्को देखके स्तुतिकर नमस्कार पूर्वक तहां राधिकेश श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें लीन होगये यह महा आश्चर्यको देवता सब देख करके विस्मयको प्राप्त होगये ॥

संविलीने हरेरंगे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥
एतस्मिन्नंतरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः ॥ ४३ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशो नाम्ना संकर्षणः स्मृतः ॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः ॥ ४४ ॥
आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम् ॥
स चागत्य नतस्कंधस्तुष्टाव राधिकेश्वरम् ॥ ४५ ॥
सहस्रमूर्धा भक्त्या च प्रणनाम च नारद ॥
आवां च धर्मपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ ॥ ४६ ॥
लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः ॥

अर्थ-श्वेतद्वीपके वासी भी श्रीकृष्णजीके स्वरूप में लीन होगये इतनेही अंदरमें बहुत शीघ्र शुद्धस्फटिकके समान प्रकाशमान संकर्षण नामवाले जिनको

सहस्र शिर हैं और सौ सूर्यके समान प्रकाश है सो आये तिनको विष्णुस्वरूप जानकर सब देवताओंने स्तुति किया वह संकर्षण भगवान् नीचे शिर कर आये और राधापतिकी स्तुति किया और सहस्र शिरसे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया पीछे इम नरनारायण दोनों धर्मके पुत्र श्रीकृष्णजीके चरणकमलमें लीन होगये अर्जुनके सहित ऐसा लिखा है ॥

प्रश्न–हे स्वामीजी ! इहां ब्रह्मवैवर्तपुराणमें व्यासजीने सबको लीन होना लिखा परंतु श्रीरामजीको लीन होना नहीं कहा और गर्गाचार्यजीने श्रीरामजीको भी कृष्णस्वरूपमें लीनहोना कहा सो क्या कारण है कृपा करके कहिये? ।

उत्तर–हे शिष्य ! इसका हाल यह है कि वेदव्यासजी निष्पक्ष वक्ता हैं और गंगाचार्यजी उपासक हैं इससे कहा है और श्रीरामजीको कृष्णस्वरूपमें लीन होना कोई शास्त्रपुराणका मत नहीं है केवल गर्गाचार्यहीका मत है ऐसेही नामकरणमें गर्गाचार्यजीने कहाहै यथा–

ककारः कमलाकांत ऋकारो राम इत्यपि ॥
षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥ ४७ ॥
णकारो नारसिंहोयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् ॥
विसर्गो च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी ॥ ४८ ॥
संप्रलीनाश्च षट्पूर्णा यस्मिञ्छब्दे महामुनौ ॥
परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥
शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः ॥
द्वापरांते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः ॥ ५० ॥
तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नाऽयं नंदनंदनः ॥

अर्थ–कृष्णशब्दमें ककार जो है सो लक्ष्मीकांत नारायण हैं और ऋकार श्रीरामजी हैं षकार षड्गुणयुक्त श्वेत द्वीप निवासी भूमा पुरुष हैं ॥ णकार नरसिंह हैं, अकार अक्षर शेषजी हैं, विसर्ग दोऊ नरनारायण ऋषि हैं यह छवो पूर्ण जिस शब्दमें लीन होवें उस करके पूर्णतम साक्षात्कृष्ण कहतेहैं ॥ शुक्ल रक्त, तथा पीत इनका युगरूपानुसार वर्ण धारण करतेहैं अर्थात् सत्ययुगमें शुक्लरूप, त्रेतामें रक्त रूप, द्वापरमें पीतरूप धारण करतेहैं और द्वापरके अन्तमें कलियुगके आदिमें कृष्णत्वको प्राप्त होजातेहैं तिससे कृष्ण ऐसा प्रसिद्ध नाम इन नन्दनंदनके है ॥

प्रश्न—हे स्वामी जी ! कृष्णावतारमें शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्ण इनमें क्या है सर्वत्र ऐसेही प्रमाण है और रामावतारमें इसका नियम नहीं है सो क्या कारण है कहिये ? ।

उत्तर—हे शिष्य ! विशेष क्या कहूं विशेष कहनेसे पक्षपात जानेंगे इसमें भेद यही है विष्णु अवतारके यही सिद्धांत है कि शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्ण चतुर्युगकी रीतिसे नाम होना और कश्यप अदिति माता : पिता अर्थात् देवकी वसुदेव होना जय, विजय रावण, कुम्भकर्ण शिशुपाल दंतवक्र होना यह सिद्धांत सर्वत्र प्रमाण है चाहे कोई ग्रन्थ देखो दूसरा प्रमाण कुछ नहीं मिलेगा चाहे गोलोकवासी अवतार होवें चाहें नारायण अवतार होवें दोनों एकही हैं सो प्रमाण पूर्वही देआयेहैं और भी कृष्णजन्मखण्डमें जब सब देवता मिल कर वैकुण्ठ गयेहैं तब विष्णु-भगवान्ने सब देवताओंसे कहा है कि आपसब गोलोक जाइये तहां हम द्विभुज कृष्णरूप हैं ॥ यथा पूर्वार्द्धे ४ अध्याये—

तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह ॥
अत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥ ५१ ॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥
ममैवैताः कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—तहां गोलोकमें मैं द्विभुज कृष्ण राधिकाजी गोपियोंके सहित हैं और इहां म लक्ष्मा सुनंदादि पार्षदों करके युक्त हूँ ॥ नारायण और कृष्णश्वेतद्वीपके वासी मैं ही हूं और यह ब्रह्मादिक देवता सब मेरी कला हैं ऐसा कहा है इससे विष्णुकेही सब रूप हैं तिनमें कृष्णस्वरूप सबसे विलक्षण रूप है और रामजी जो साकेत विहारी हैं सो नारायण और कृष्ण दोनोंसे विलक्षण हैं सो मनु शत रूपामें अवतार लेतेहैं जब भानुप्रताप रावण होतेहैं यह प्रसंग रामोपासनासिद्धांतमें आगे कहेंगे ॥ पुनः भागवते ॥

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥
शुक्लो रक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ ५३ ॥
प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवाऽऽत्मजः ॥
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाःसंप्रचक्षते ॥ ५४ ॥
बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ ५५ ॥

अर्थ-गर्गाचार्यजी बोले कि इनके तीन वर्ण हैं जब युगानुसार शरीर धारण करतेहैं तब सतयुगमें शुक्लवर्ण, त्रेतामें रक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण इसकाल विषय कृष्णत्व (काले) होगयेहैं। इससे कृष्ण नाम है। पूर्वमें कभी आपका पुत्र वसुदेवके घर जन्म धारण कियेहैं इससे वासुदेव ऐसा भी स्वस्वरूपके ज्ञाता कहतेहैं। आपके पुत्रके नाम, रूप बहुत हैं। गुण कर्म रूप वह हम नहीं जानतेहैं दूसरे भी कोई नहीं जानतेहैं। हे शिष्य ! श्रीभवगत प्रधान ग्रंथमें भी ऐसाही कहा है इससे चतुर्युगानुरूप ही नाम ठीक है।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! कृष्णावतार तो द्वापरांतमें हुआ है फिर कलियुगके आदि कैसे हुआ सो कहिये--

उत्तर--हे शिष्य ! शास्त्रमें लिखा है कि दो सौ वर्ष पूर्वही युगारंभ होजाता है इससे दोसौ वर्ष द्वापरमेंही कलियुग होगया है। इससे कृष्णावतार कलियुगके आदिहीमें माना जाता है इससे संदेह करना वृथा है फिर ब्रह्मवैवर्त पुराणजन्मखंडके १३ अध्याय में कहा है यथा--

नारायणो यो वैकुंठे कमलाकांत एव च ॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पिता विष्णुश्च सोप्यजः ॥ ५६ ॥
कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनायणावृषी ॥
सर्वेषां तेजसां राशिमूर्तिमानागतः किमु ॥ ५७ ॥
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य वल्लभ ॥
शुक्लः पीतस्तथा रक्त इदानीं कृष्णतां गतः ॥ ५८ ॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रतेजसावृतः ॥
त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः ॥ ५८ ॥
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमांस्तेजसां राशिरेव च ॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६० ॥

अर्थ--नारायण जो वैकुंठमें लक्ष्मीकांत हैं और श्वेतद्वीपके जो निवासी विष्णु हैं कपिल तिनके अंश नर नारायण जो हैं तिन सबका तेज समूह मिलकर मूर्तिमान् होकर इहां आये हैं। इस बालकका युगयुगमें वर्णभेद और नाम भेद है तिनमें शुक्ल, पीत, रक्त इस काल विषे कृष्णत्वको प्राप्त होगयेहैं। शुक्लवर्ण तीक्ष्ण तेजकर युक्त सत्पयुगमें हैं त्रेतायुगमें यह रक्तवर्ण हैं द्वापर में यह पीतवर्ण हैं। कलि-

युगमें तेज युक्त कृष्णवर्ण हैं । सब तेज करके युक्त जो होवह परिपूर्णतमब्रह्म श्रीकृष्णहीको कहतेहैं ॥ पुनः ॥

ब्रह्मणो वाचकः कोयमृकारोऽनंतवाचकः ॥
शिवस्य वाचकः पश्च नकारो धर्मवाचकः ॥ ६१ ॥
अकारो विष्णुवचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥
नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः ॥ ६२ ॥
सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्तिस्वरूपकः ॥
सर्वाधारः सर्ववीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६३ ॥

अर्थ–ककार ब्रह्माजीका वाचक है, ऋकार अनंतवाचक है, षकार शिवका वाचक है, नकार धर्मवाचक है, अकार विष्णुवाचक है, जो कि क्षीरसागरमें रहतेहैं, विसर्ग नरनारायणके अर्थका वाचक है। सबका तेजसमूह सर्वमूर्तिके स्वरूप सबका अधार सबका बीज जो होवे उसको कृष्ण कहतेहैं।

प्रश्न–हे स्वामी जी ! इहां पुराणमें ऋकारका अनंतका अर्थ किया है और गर्गाचार्यने 'ऋकारो राम इत्यपि' ऐसा कहाहै सो क्यों ?

उत्तर–हे शिष्य ! पुराणमें ऐसा कभी न कहेंगे केवल गर्गाचार्यहीका सिद्धांत है। पुनः–

कर्मनिर्मूलवचनः कृषिर्नो दास्यवाचकः ॥
अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६४ ॥
कृषिर्निश्चेष्टवचनो नकारो भक्तिवाचकः ॥
अकारः प्राप्तिवचनस्तेनकृष्ण इति स्मृतः ॥ ६५ ॥
कृषिर्निर्वाणवचनो नकारो मोक्षवाचकः ॥
अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६६ ॥
नाम्नां भगवतो नंद कोटीनां स्मरणेन यत् ॥
तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः ॥ ६७ ॥

अर्थ–कृषि कर्म निर्मूल वाचक है नकार दासवाचक है और अकार दातृवाचक है, उस करके कृष्ण ऐसा कहतेहैं, भाव कृष्ण कहनेसे कर्म निर्मूल होजाताहै कृषि निश्चेष्टा वाचक है, नकार भक्तिवाचक है और अकार प्राप्तिवाचक है उस करके कृष्ण ऐसा कहतेहैं। भावकृष्ण कहनेसे निष्केवलभक्ति प्राप्ति होती है। कृषि-

निर्वाण (अखंड) वाचक है, नकार मोक्षवाचक है और अकार दातृवाचक है उस करके कृष्ण ऐसा कहतेहैं। भाव-कृष्णकहनेसे अखण्ड मोक्ष प्राप्ति होती है। गर्गाचार्यजी कहतेहैं, कि हे नंदजी ! भगवतके कोटि नाम स्मरण करके जौन फल होताहै वह फल एकवार कृष्ण ऐसा कहनेसे निश्चय मनुष्यको प्राप्त होताहै॥ पुनरपि तत्रैव॥

यद्विधं स्मरणात्पुण्यं वचनाच्छ्रवणात्तथा॥
कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद्यत्स्मरणादिकात्॥ ६८॥
विष्णोर्नाम्नां च सर्वेषां सारात्सारं परात्परम्॥
कृष्णेति सुन्दरं नाम मंगलं भक्तिदायकम्॥ ६९॥
ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं मृत्युजन्महम्॥
ऋकाराद्दास्यमतुलं षकाराद्भक्तिमीप्सिताम्॥ ७०॥
नकारात्सहवासं च तत्समं कालमेव च॥
तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः॥ ७१॥

अर्थ-जिस विधि स्मरणसे वचनसे तथा श्रवणसे पुण्यही होताहै और कोटि जन्मोंके पाप जिनके स्मरणादिकसे नाश होते हैं। विष्णुके सकलनामोंके सारसे भी परम सार परातपर कृष्ण ऐसा सुन्दर भक्ति दायक मंगल नाम है। ककार कहनेसे भक्त जन्म मरणको नाश कर कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त होतेहैं ऋकारसे अतुल फलको, षकारसे इच्छित भक्तिको प्राप्त होते हैं। नकारसे सहवासको और उसी समान कालको जीतकर वह नित्य सारूप्यको विसर्गसे प्राप्त होतेहैं इहां संदेह नहीं है॥ पुनः तत्रैव॥

ककारोच्चारणादेव वेपंते यमकिंकराः॥
ऋकारोक्तेर्न तिष्ठंति षकारात्पातकानि च॥ ७२॥
नकारोच्चारणाद्रोगा अकारान्मृत्युरेव च॥
ध्रुवं सर्वे पलायंते नामोच्चारणभीरवः॥ ७३॥
स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात्कृष्णनाम्नो व्रजेश्वर॥
रथं गृहीत्वा धावंति गोलोकात्कृष्णकिंकराः॥ ७४॥

अर्थ-ककारको उच्चारण करनेसे यमराजके दूत सब कांपतेहैं ऋकार षकार कहे-से पाप सब नहीं रहतेहैं और नकार कहनेसे रोग सब अकार कहनेसे मृत्यु

साढे तीन कोटि तीर्थ स्नानके फल, तपकरनेका फल,हजारों वेदपाठके फल, पृथ्वी सौ वार प्रदक्षिणा करनेका फल; तिन सब फल मिला करके कृष्णनाम जपनेका षोडशी कलाको नहीं प्राप्त होसक्ते हैं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! केवल कृष्णनाम जपे कि राधाकृष्ण कहै अथवा कृष्णराधा विपरीत नाम जपे? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! ब्रह्मवैवर्तपुराणमें ऐसा कहा है यथा-

आदौ राधां समुच्चार्य कृष्णं पश्चाद्वदेद् बुधः ॥
व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः ॥ ॥ ८८ ॥
जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ॥
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥ ८९ ॥
राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः ॥
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः ॥ ९० ॥
आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् ॥
स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमणे मुने ॥ ९१ ॥

अर्थ-आदिमें राधा कहे पीछेसे कृष्णको पण्डित कहतेहैं उलटा याने कृष्ण राधा कहनेसे ब्रह्महत्या प्राप्त होतीहै । इसमें संदेह नहीं । काहेसे कि प्रकृति संसारकी माता है और पुरुष पिता है; पितासे माता सौगुणा संसारमें श्रेष्ठ है । इससे राधाकृष्ण, गौरीशंकर ऐसा ही वेदमें सुनतेहैं, कृष्णराधा, शंकरगौरी ऐसा लोकमें कभी नहीं सुना है ॥ इससे आदिमें जो पुरुष कहतेहैं पीछे प्रकृति कहतेहैं; भाव-जो कृष्णराधा, शंकरगौरी, रामसीता, नारायण लक्ष्मी कहतेहैं वह माताको नाशकरनेवाले होतेहैं । काहेसे कि वेद मर्यादाको उलंघन करना ठीक नहीं है । यह बचन नारायणके नारदसे हैं ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! कुछ श्रीराधिकाजी की परत्व कृपा करके कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! श्रीराधिकाजीकी परत्व और कृष्णजीके परत्व, विशेष करके पद्मपुराणके पातालखण्ड प्रथमाध्यायमें कहा है । यथा-

वैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ॥
गोलोकैश्वर्यं यत्किंचिद्गोकुले तत्प्रतिष्ठितम् ॥ ९२ ॥
वैकुण्ठवैभवं यद्वै द्वारकायां प्रतिष्ठितम् ॥
नखेन्दुकिरणश्रेणी पूर्णब्रह्मैककारणम् ॥ ९३ ॥

केचिद्वदंति तस्यांशं ब्रह्मचिद्रूपमव्ययम् ॥
तद्दशांशं महाविष्णुं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ९४ ॥
तत्कलाकोटिकोट्यंशा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
सृष्टिस्थित्यादिना युक्तास्तिष्ठंति तस्य वैभवाः ॥ ९५ ॥
तद्रूपकोटिकोट्यंशाः कलाः कंदर्पविग्रहाः ॥
जगन्मोहं प्रकुर्वंति तदंडांतरसंस्थिताः ॥ ९६ ॥

अर्थ-वैकुंठादि गोलोकके अंशांश हैं और वृंदावन पृथ्वीमें स्वयं है, गोलोकके जो ऐश्वर्य्य हैं वह गोकुलमें हैं, वैकुंठके विभव द्वारकामें हैं, श्रीकृष्णचन्द्रजीके नख-चन्द्रके समूह प्रकाश पूर्णब्रह्मके कारण हैं। कोई २ कहते हैं कि उस पूर्णब्रह्मके अंशांश निर्गुण ब्रह्म आनंद स्वरूप हैं तिनके दशांश महाविष्णुको ऋषिलोग कहते-हैं। तिन महाविष्णुके कलाअंशसे कोटिकोटि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव होतेहैं। संसारके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेके लिये। तिनके वैभव सब ब्रह्माण्डमें स्थित हैं। तिनके स्वरूपके अंशकलासे कोटि कोटि कामदेव होतेहैं और सब संसारको मोहतेहैं ऐसे सर्व ब्रह्मांडमें स्थित हैं।

तद्देहविलसत्कांतिकोटिकोट्यंशको विभुः ॥
तत्प्रकाशस्य कोट्यंशरश्मयो रविविग्रहाः ॥ ९७ ॥
तस्य स्वदेहकिरणैः परानंदरसामृतैः ॥
परमामोदचिद्रूपैर्निर्गुणस्यैककारणैः ॥ ९८ ॥
तदंशकोटिकोट्यंशा जीवंति किरणात्मिकाः ॥
तदंघ्रिपंकजद्वंद्वनखचन्द्रमणिप्रभाः ॥ ९९ ॥
आहुः पूर्णब्रह्मणोऽपि कारणं वेददुर्गमम् ॥
तदंशसौरभानंतकोट्यंशो विश्वमोहनः ॥ १०० ॥
तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा ॥
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥ १०१ ॥
तस्या अंघ्रिरजःस्पर्शात्कोटिविष्णुः प्रजायते ॥

अर्थ-तिनके देहकी कांतिसे कोटि कोटि अंश विभु समर्थ हैं तिनके प्रकाशके कोटि अंशप्रकाशसे सूर्य हैं। तिनके स्वदेहके प्रकाशरूप आनंदामृतरस सच्चिदानंद

निर्गुण ब्रह्मके कारण हैं। तिन कृष्णभगवान्के कोटिअंशके कोटि अंशसे अग्नि आदिक प्रकाश करतेहैं तिनके दोनों चरणकमलनखचंद्रमणिप्रभापूर्णब्रह्मके भी कारण वेद कहतेहैं जो कि अत्यंत दुर्गम हैं। उनके अंशसुवासके अंशकोटि भागसे संसारके मोहन सुगंधादि हैं तिन श्रीकृष्णजीके प्राणप्रिया आदिप्रकृति श्रीराधिकाजी हैं तिनके अंश कलासे कोटि कोटि त्रिगुणात्मिका देवी दुर्गा सरस्वती होतीहैं। तिन राधिकाजीके चरणारजस्पर्शसे कोटिन विष्णु उत्पन्न होतेहैं ऐसा कहा है इससे राधाकृष्णका परत्व भारी है। फिर ऐसा ही श्रीराधिकाजीका परत्व ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहाहै। यथा-

राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा ॥
तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥ १०२ ॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी ॥
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसंपत्प्रदायिनी ॥ १०३ ॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां वै गृहे गृहे ॥
दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ॥ १०४ ॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥ १०५ ॥

अर्थ-श्रीराधिकाजीके वामांश भागकरके महालक्ष्मी हुई हैं तिनके अंश अधिष्ठातृदेवी गृहलक्ष्मी हुई हैं। वह चतुर्भुज भगवान्की स्त्री वैकुंठवासिनी हैं तिनके अंश राजलक्ष्मी हैं जो राजसंपत्तिकी देनेवाली हैं। तिनके अंश मनुष्योंके घरकी लक्ष्मी हैं जो कि सबके घर २ में हैं। वह दीपाधिष्ठातृदेवी सबकी गृहदेवता हैं। और स्वय राधा कृष्णप्यारी हैं सो श्रीकृष्णजीके अंकमें स्थित हैं जो कृष्ण परमात्माके प्राणकी अधिष्ठातृ हैं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! श्रीभागवतमें राधिकाजीके नाम नहीं है सो क्या कारण है?

उत्तर-हे शिष्य ! भागवतमें भी राधिकाजीके नाम हैं परंतु, गुप्त हैं। काहेसे कि भगवान्के दो स्वरूप हैं एक विहारस्वरूप हैं एक सृष्टिकर्ता हैं तिनमें नित्य विहारस्वरूप राधाकृष्ण हैं तिनके चरित भागवतमें गुप्त हैं: और नारायणके चरित्र प्रसिद्ध हैं इसीसे भागवतमें राधिका जीके चरित्र नाम गुप्त, है सो दशमस्कंधमें प्रसिद्ध है जहांपर सब गोपियोंको छोडकर भगवान् राधिकाजीको लेकर चले गये हैं। फिर राधीकाजीको भी छोडकर अंतर्धान होगयेहैं। यथा-

अनयाऽऽराधितो नून भगवान् हरिरीश्वरः ॥
यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद्रहः ॥

अर्थ-'तस्याः राधयति आराधयति इति राधेति नाम निरुक्तिमाहुः'. गोपी बोली, कि दुःखहर्ता ईश्वर भगवान् निश्चय करके आराधन करी उनको लेकर गई और भगवान् जिससे हम सबको छोडकर जिनको प्रीतसे गोविन्द एकांत लेगये और दूसरेको नही लेगये। इससे जो भगवान्का आराधन किया उससे राधानाम कहा है काहे से नारदपंचरात्रमें ऐसा ही स्पष्ट कहा है। यथा-

अनयाऽऽराधितः कृष्णो भगवान्हरिरीश्वरः ॥
लीलया रसवाहिन्या तेन राधा प्रकीर्तिता ॥ १०६ ॥

अर्थ-दुःखहर्ता समर्थ कृष्ण भगवान्को प्रेम पूर्वक आराधन कियेते और लीलारसमें परिपूर्ण मग्न हो उस करके राधा कहाहै फिर कृष्णयामलमें भी कहा है। यथा-

मम देहस्थितैः सर्वैर्देवैर्ब्रह्मपुरोगमैः ॥
आराधिता यतस्तस्माद्राधेति परिकीर्तिता ॥ १०७ ॥

अर्थ-मेरे देहमें रहे हुए ब्रह्मादि सब देवताओंने आराधना किया तिस कारण राधा ऐसा कहा है। इससे राधानामका ठीक अर्थ एही है इसमें संदेह करना वृथा है, दूसरे जहां सब गोपीको छोडकर कृष्णभगवान् एक गोपीको लेकर चलेगये हैं सो राधिकाही है ऐसा ब्रह्मवैवर्तादि पुराणमें तथा नारद पंचरात्रादिमें प्रसिद्ध है इससे इहां पर श्रीभागवतमें भी राधिकाजीका ही वर्णन है। फिर भी कृष्णयामलमें कहा है कृष्णजीने, कि हम अपने आत्माको दो स्वरूप करेंगे धरा और लक्ष्मी तिन-में धरा गोलोकहैं और लक्ष्मी गोपीरूप राधा हैं। हम गोपरूप धरेंगे गोविन्द नाम-से विख्यात होंगे ललितादिक सखी राधिकाजीकी दासी होवेंगी। तहां कृष्णवचन राधासे-

त्वया चाराध्यते यस्मादहं कुञ्जमहोत्सवे ॥
राधेति नाम विख्याता रसलीलाधिनायिका ॥ १०८ ॥

अर्थ-तुमरे करके मैं रासकुंज महोत्सवमें आराधन कियागया हूं। जिससे तुम्हारा राधा ऐसा नाम विख्यात है इससे यथार्थ है।

प्रश्न-हे स्वामीजी! लक्ष्मीजी भी राधा हुईहैं ऐसा कृष्णयामलमें लिखा है फिर राधा स्वयं कैसे हुई? सो कहिये।

उत्तर-हे शिष्य! इससे तुमको क्या काम है शास्त्रमें अनेक भेद हैं कहीं २ लिखा है कि श्रीरामही जी द्वापरमें श्रीकृष्णजी होतेहैं और ब्रह्माण्ड पुराण उपोद्घातपादके ३७ अध्यायमें लिखा है कि श्रीकृष्णहीजी त्रेतामें रामावतार धारण करतेहैं सो स्वयं श्रीकृष्णहीजीने परशुरामजीसे कहाहै । यथा-

चतुर्विंशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः ॥
रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः ॥
कौशल्यानन्दजनको राज्ञो दशरथादहम् ॥

अर्थ-चतुर्विंश २४ वें त्रेतायुगमें हे वत्स ! रघुवंशमें राम नाम वाले मैं होऊंगा । सनातन चतुर्व्यूहोंके सहित कौशल्या और राजा दशरथजीसे मैं जन्मलेकर आपके मानभंग करके पुनः धनुर्बाण लेऊंगा। ऐसा लिखा है इससे शास्त्रमें अनेक भेद हैं। फिर भी पद्मपुराणमें लिखा है, कि एक बार इन्द्राणीने विष्णुके अंकमें लक्ष्मीजीको देखकर प्रार्थना किया कि मेरेको भी अंकवासिनी करो तब विष्णु भगवान् बोले, कि हे भद्रे ! तुम ६० सहस्रवर्ष तप करो तब कृष्णावतारमें तुम राधा होकर अंकवासिनी हो-उगी। सोई राधा हुई। ऐसे ही नारदपंचरात्रमें लिखा है कि सती जो रामजीको देख करके सीतारूप धारण किया है सोई कल्पांतरमें राधा हुई है । हे शिष्य ! ऐसे २ शास्त्रोंमें अनेक कारण हैं इससे क्या काम है गोलोकवासिनी राधा प्रधान हैं उन्हीं-की उपासना प्रधान है ।

प्रश्न-हे स्वामी जी! कृष्णावतार कौन द्वापरमें हुआ है? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! ब्रह्मपुराणके ८८ अध्यायमें लिखा है। यथा-

पुरा गर्गेण कथितमष्टाविंशतिमे युगे ॥
द्वापरांते हरेर्जन्म यदुवंशे भविष्यति ॥ १०९ ॥

अर्थ-पूर्व गर्गाचार्यकरके कहा २८ युगमें द्वापरके अन्तमें यदुवंशमें भगवा-न्‌के जन्म होयँगे इस वचनसे इसी द्वापरांतमें कृष्णावतार भया है ।

प्रश्न—हे स्वामी जी ! गोलोकवासी कृष्ण द्वारकासे परधाम गये हैं कि वृन्दा-वनहीसे गयेहैं ।

उत्तर-हे शिष्य ! गोलोकवासी कृष्ण वृन्दावनहीसे गये हैं कोई २ महात्माके सिद्धांत हैं कि " वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति" सो भी ठीक है काहेसे कि वृन्दावन गोलोक एकही हैं। हे शिष्य! गौतमसंहितामें कहाहै कि कृष्णभगवान् १२ वर्ष क्रीडा करके वृन्दावन हीसे गोलोकको गये हैं । यथा-

द्वादशवर्षाणि क्रीडित्वा वृन्दावनवनेश्वरः ॥
ततो गच्छति गोलोकं राधिकासहमाधवः ॥ ११० ॥
राधा मायांशसंभूता छाया वृन्दावने वने ॥
छाया च मानुषीरूपा शतवर्षाण्यवर्तत ॥ १११ ॥
श्रीदाम्नश्चैव शापेन वृषभानुसुताऽधुना ॥
शतवर्षाणि शापेन छायारूपा च राधिका ॥ ११२ ॥
तथापि छायालीनेषु गोलोके राधिका स्वयम् ॥
सा गोलोकेश्वरी देवी स गोलोकेश्वरो हरिः ॥ ११३ ॥

अर्थ-द्वादश १२ वर्ष क्रीडा करके वृन्दावनाधिपति कृष्णजी राधिकाजीके सहित गोलोकको चले जाते हैं। तब राधिकाजी मायाके अंशसे उत्पन्न होकर छाया राधिका वृन्दावनेश्वरी वृंदावनमें रहती हैं वह छाया मानुषी रूपसे सौ वर्षतक श्रीदामाके शाप पूरा करनेके लिये रहती हैं। श्रीदामाके शाप करके वही इस कालमें वृषभानुकी पुत्री हैं सौ वर्षपर्यंत शाप करके छायारूपा राधिका रहेगी पीछे छाया गोलोकमें लीन होनेसे स्वयं राधा हो जावेगी वही गोलोकेश्वरी राधा देवी हैं वहां गोलोकेश्वर हरि हैं। हे शिष्य ! गोलोकमें राधिकाजीको श्रीदामाने शाप दिया है कि आप भारत भूमिमें मानुषी होगी और सौ वर्ष कृष्णजीसे विच्छेद होगा तब कृष्णजीने वरदान दिया कि छायारूपसे विच्छेद होगा स्वयं नहीं सोई कथा इहां है और भी सर्वत्र पुराणोंमें यह कथा प्रसिद्ध है छायारूप राधा रायाण वैश्य की पत्नी हुई है और सौ वर्ष तक रायाण वैश्य कृष्णजीके सखाके साथ वृंदावनमें रही पीछे गोलोक गई हैं।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! गोलोकवासी कृष्ण कंसादिको मारे हैं कि नहीं ?

उत्तर-हे शिष्य ! कहातो कि गोलोकवासी कृष्ण वृन्दावनहीसे गोलोक चले जाते हैं और नारायण कृष्णरूप होकर कंसादिको मारके द्वारकाजी जाते हैं द्वारकाजीके सब कार्य करके वैकुण्ठको जाते हैं यथा ब्रह्मवैवर्ते जन्मखण्डे-

मम नारायणांशो यस्तस्य यानं च द्वारका ॥
शतवर्षांतरे साध्यमेतदेव सुनिश्चितम् ॥ ११४ ॥

अर्थ-६ अध्यायमें कृष्ण वचन है कि मेरा अंश जो नारायण हैं तिनके यान द्वारका पुरी हैं यह सौ वर्षके अन्तरमें सर्व कार्य साधन करके निश्चय होगा पीछे वैकुण्ठ जायँगे ॥ पुनस्तत्रैव—

प्रस्थापयित्वा द्वारं च परं नारायणांशकम् ॥
सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधया सह ॥ ११५ ॥
गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगतां पतिः ॥
नारायणश्च वैकुण्ठं गमिताः स्म त्वया सह ॥
धर्मगृहं ऋषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेव च ॥ ११६ ॥

अर्थ-१३ वें अध्यायमें श्रीकृष्णजीके वचन नंदजीसे हैं कि अमुक २ कार्यको करके पर नारायण अंशको द्वारकामें स्थापित करके सब निष्पादन करके हम राधिकाजीके सहित गोलोकको जायँगे और यह जगत्पति नारायण आप सबके सहित वैकुण्ठ जायँगे और धर्मपुत्र दोनों नरनारायण धर्मगृहको जायँगे विष्णु क्षीरसागरको जायँगे ऐसा कहाहै इससे कृष्णजी वृन्दावनहीसे गोलोक जातेहैं यह प्रसिद्ध है इसमें संदेह करना वृथा है।

प्रश्न-हे स्वामी जी! अब अतिशय श्रीकृष्णजीके माहात्म्य कहिये।

उत्तर-हे शिष्य! शांडिल्यसंहिताके भक्तिखण्ड अध्याय ४ में गोपालसहस्रनाममें ऐसा कहाहै यथा-

कृषिर्भूवाचको णश्च परमानंदवाचकः ॥
सदानंदस्ततः कृष्णः प्रोच्यते पुरुषोत्तमः ॥ ११७ ॥
रविकोटिप्रतीकाशो वायुकोटिमहाबलः ॥
समुद्रकोटिगंभीरो मेरुकोटिमहाचलः ॥ ११८ ॥
कल्पद्रुकोटिफलदः कामधुक्कोटिपूजितः ॥
कोटिचिंतामणिस्थानश्चन्द्रकोटिसुरंजनः ॥ ११९ ॥
सुधाकोटिमहानंदः कोटिमन्मथसुन्दरः ॥
कोटींदिरासेवितांघ्रिः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ॥ १२० ॥
वेदकोटिप्रगीतश्रीर्योगकोटिधृताशयः ॥
भक्तकोटिवृतः श्रीमान् कोटिधैश्वर्यमंगलः ॥
अनंतोऽनंतशीर्षेशो नागराजसमर्चितः ॥ १२१ ॥

अर्थ-कृषि भूवाचक है और ण परमानन्दवाचक है सदानन्दस्वरूप हो सो कृष्ण पुरुषोत्तम कहातेहैं। सो कैसेहैं कि कोटि सूर्यके समान प्रकाशमानहैं, कोटि वायुके समान महाबली हैं, कोटि समुद्र सम गंभीर हैं, कोटि सुमेरु सम

महा अचल है, कोटि कल्प वृक्षसे कामनादेनेवाले हैं,कोटि कामधेनु सम पूजित हैं। कोटि चिंतामणिके समान दुःखहर हैं, कोटि चन्द्रमा सम आनंद देनेवाले हैं, कोटि सुधा (अमृत) समान महा आनंद हैं, कोटि कामसे सुंदर हैं, कोटि लक्ष्मी करके चरणकमल रजसेवित हैं, कोटि ब्रह्माण्डके स्वरूप हैं, कोटि वेदकरके श्रीयश जिनके कथित हैं, कोटि योगके समान चित्त निरोधाशयधारक हैं। कोटिभक्तके तुल्यव्रत श्रीमान् हैं, कोटि धैर्य्य, ऐश्वर्य्य, मंगल, स्वरूप हैं, कोटि शेष करके पूजित हैं। हे शिष्य! ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र हैं और राधिकाजी भी तैसी ही हैं। यथा पंचरात्रे–

राधा वामांशसंभूता महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥
ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवीश्वरस्यैव हि नारद ॥ १२२ ॥
तदंशा सिंधुकन्या च क्षीरोदमथनोद्भवा ॥
मर्त्यलक्ष्मीश्च सा देवी पत्नी क्षीरोदशायिनः ॥ १२३ ॥
तदंशा स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रादीनां गृहे गृहे ॥
स्वयंदेवी महालक्ष्मीः पत्नी वैकुंठशायिनः ॥ १२४ ॥

अर्थ-तृतीयरात्रमें शिवजीके वचन नारदजीसे हैं कि राधाजीके वामांशसे महालक्ष्मी उत्पन्न हुई हैं ऐसा कहा है और ऐश्वर्य्यके अधिष्ठात्री देवी हैं तिनके अंश सिंधुकन्या हैं जो समुद्र मथनेसे उत्पन्न हुई है वह मृत्युलोककी लक्ष्मी हैं भूमा पुरुषकी प्यारी हैं तिनके अंश स्वर्गलक्ष्मी है। जो इन्द्रादिदेवताओंके घरघर में है और स्वयं देवी महालक्ष्मी जो हैं सो वैकुंठवासी नारायणकी स्त्री हैं।

प्रश्न--हे स्वामी जी! एक बात कृपा करके कहिये कि बालकोंको क्रीटमुकुटादि शृंगार करके जो रासधारी लोग रहस्यलीला करतेहैं सो करना चाहिये कि नहीं? यदि प्रमाण हो तो कृपा करके कहिये।

उत्तर--हे शिष्य! रहस्यलीला करना शास्त्र प्रमाण है परन्तु भावसहित करना चाहिये ऐसा नहीं कि पैसाके लिये द्वार द्वार घूमना सो तो केवल नरक जानेका हेतु है। हे शिष्य! लीलाकरनेको ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्डके २७ अध्यायमें प्रसिद्ध है यथा प्रमाण--

कार्तिकी पूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम् ॥
गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥ १२५ ॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णं राधया सह ॥
भारते पूजयेद्दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥ १२६ ॥

अर्थ-कार्तिकी पूर्णमाके दिन रासमंडलकरके तिनमें सैकड़ों गोप सैकड़ों गोपीको वनाके पूजे यदि ऐसा न होसके तो शिलाके राधिकाजीके सहित श्रीकृष्ण-जीकी मूर्त्ति बनाके षोडश उपचार देकरके भारतखण्डमें पूजे ऐसा करे तो अवश्य कल्याण हो। ऐसे ही गौतमतंत्रमें लिखा है कि रासलीला प्रेमपूर्वक करे। यथा-

सावधानं मनः कृत्वा कारयेद्विधिसंयुतम् ॥
राधाकृष्णादिवेषं च प्रतिष्ठां कारयेद् ध्रुवम् ॥ १२७ ॥
रासस्थलं प्रतिष्ठेऽयं मया कर्तुं नियुज्यते ॥
श्रीकृष्णरमणार्थाय राधया सह तद्रते ॥ १२८ ॥
रासाब्धौ राधिकाकृष्णौ रसरूपौ रसात्मकौ ॥
रासक्रीडाप्रियौ पूर्णौ स्वांगीकारकरौ हि मे ॥ १२९ ॥
कृष्णक्रीडान्वितां लीलां यः करोति नृपोत्तम ॥
स याति परमाख्यानं स्थानं दृष्टानुमोदकः ॥ १३० ॥

अर्थ-सावधान मनको करके विधिपूर्वक करे और ब्राह्मण बालकोंको राधा-कृष्णके स्वरूप आदि लेकरके ललिता विशाखा आदिसखियोंके स्वरूप सबको निश्चय करके प्रतिष्ठा करे और जहां रासलीला करे उस स्थानको भी प्रतिष्ठा करे और कहे कि हे प्रभो ! यह कार्य करनेको मैं निर्माण करताहूं कि श्रीराधिकाजीके सहित कृष्णचंद्रजी रमण करें तथा नाना विधि प्रीति भाव करें । और कहे कि हे रसके सागर युगलकिशोर ! आप दोनों कैसे हैं कि रसरूप हैं रसात्मक हैं रासक्रीडाकरके दोनों परिपूर्ण हैं इससे हमारे मनोरथको दोनों अंगीकार करें। नारदजी बोले कि हे राजन् ! कृष्णक्रीडा करके युक्त जो कोई रासलीलाको करतेहैं वह साक्षात् गोलोक धामको जातेहैं और तहांके ऐश्वर्य देखकरके आनंदको प्राप्त होतेहैं । हे शिष्य ! थोडा कहा उसमें विस्तारसे वर्णन किया है इसमें ब्राह्मणके पुत्र हो सुपात्र ८ वर्षसे १६ वर्षतक स्वरूप बनावे विशेष नहीं और जिस बालकका यज्ञोपवीत न भया हो और विवाह न भया हो उसको स्वरूप न बनावे तथा काने, खोटे, कूबडे, लूले; छअंगुलवाले, रोगी, कुलक्षणवाले, पापबुद्धिवाले, क्षत्रिय, वैश्य इन सबको कभी भी राधाकृष्णके स्वरूप नहीं बनावे यदि बनावे तो दोषभागी हो, इसमें सुंदर श्यामचंचल दृष्टिचित्तवाले, गीतनृत्यमें निपुण, ज्ञानी, दयालु, शांतस्वभाववाले, हाव, भाव करके युक्त शुद्धहृदयवाले ऐसेका स्वरूप बनावे और स्वरूपोंको राधाकृष्ण ही साक्षात् जाने दुष्ट भावसे न देखे यदि स्वरूपोंको दुष्टभावसे देखे अथवा मनुष्य जाने मारे पीटे दुःख देखे तो वह दुष्ट

पापी जन्म जन्मांतर नरकमें रोवेगा। हे शिष्य! जो स्वरूपोंको दुःख देता है उसको बार२ धिक्कार है विशेष क्या कहें। हे शिष्य! आजकालके जेतने रासधारी हैं और रामलीलावाले हैं वह सब दुष्ट नरकगामी हैं काहेसे कि पैसाके लोभ करके द्वार २ मारे २ घूमते हैं और स्वरूपोंको बडी २ दुर्दशा करते हैं भावतो दुष्टोंको छू नहीं गया है जिसी स्वरूपोंको रामकृष्ण बनातेहैं उसीको रंडी बनाकरके नचातेहैं उन दुष्टोंको धिक्कार है धिक्कार है बार बार धिक्कार है। हे शिष्य! विशेष देखना हो तो (वेदार्थ प्रकाश रामायण) देखो ॥ जिसमें रामलीला करनेकी पूर्ण विधि लिखी है अवश्य ही देखने योग्य है।

के शवाः पुरुषा लोके येषां हृदि न केशवः ॥
केशवार्पितसर्वांगा न शवा न पुनर्भवाः ॥ १२१ ॥

अर्थ-शास्त्र कहता है कि संसारमें के (शव) नाम मुर्दा हैं जिनके हृदयमें केशव भगवान् नहीं हैं। जिनका सर्वांग केशव भगवान्को अर्पित है वह न शव (मुर्दा) हैं न फिर संसारमें जन्म ही लेतेहैं इससे सब छोडकर श्रीराधाकृष्णमें प्रीतिकरना यही सार है।

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवश्रीसरयूदासेन विरचिते उपासनात्रयसिद्धान्ते गुरुशिष्यसंवादे श्रीराधाकृष्णोपासनासिद्धांतसारसंग्रहः समाप्तः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते सदा ॥

अथ श्रीरामोपासनासिद्धांतप्रारंभः ॥

नमाम्ययोध्यां सरयूं सरिद्वरां नमामि रामं रघुवंशभूषणम् ॥
अजाब्धिचंद्रं नृपवर्य्यभूषणं नृपस्य सर्वा महिषीं नमाम्यहम्॥ १॥
नमामि रामं रघुवंशभूषणं नमामि सौमित्रमतीव सुंदरम् ॥
नमामि श्रीमद्भरतं कृपानिधिं नमामि शत्रुघ्नमुदारदर्शनम् ॥२ ॥

अर्थ-अयोध्यापुरीको, सब नदियोंमें श्रेष्ठ सरयूको, रघुवंशकुलभूषण श्रीरामजीको, अजकुल समुद्रसे उत्पन्न चन्द्रमाके समान राजाओंमें भूषण श्रीदशरथजी महाराजको तथा कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रादि सब रानियोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ रघुवंश (कुल) भूषण श्रीरामजीको, अतिशय सुन्दर श्रीलक्ष्मणजीको, तथा कृपासागर श्रीमान् भरतजीको, उदार दर्शनवाले श्रीशत्रुघ्नजीको नमस्कार करताहूं ॥

प्रश्न-हे स्वामी जी ! आपके मुखारविंदसे श्रीनारायण उपासना और सर्वोपरि श्रीकृष्णोपासनासिद्धांत में सुना, अब आप दासपर कृपा करके श्रीरामजीका उपासनासिद्धांत कहिये । जैसा कि अयोध्यावासी रामोपासक सब करते हैं ।

उत्तर-हे शिष्य ! श्रीरामोपासक तो बहुत होगये हैं और वर्तमानकालमें हैं भी परन्तु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके समान रामोपासक होना दुर्लभ है और न ऐसा कोई विद्वान् ही हुआहै। यह बात भारतखण्डभरमें प्रसिद्ध है विशेष क्या कहें जिनकी विमलकीर्तिको सब घर २ गारहे हैं । हे शिष्य ! यदि गोस्वामीजी न होते तो हम सब दुष्टोंको श्रीरामजीके सन्मुख को करता और श्रीरामजीको जानते भी नहीं कि कौन राम हैं । और कहां रहते हैं, केवल स्वामीजीकी कृपासे ही सब भया है ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कौन हैं और किनके अवतार हैं ? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! यह बात भरतखण्डमें विख्यात है कि गोस्वामीजी श्रीमदादिकवि वाल्मीकिजीके अवतार हैं विना वाल्मीकिजीके ऐसा विमल प्रमाणिक श्रीरामयश को वर्णन करसकता है ।

प्रश्न—हे स्वामीजी! महान् कवि वाल्मीकिजी तुलसीदासजी क्यों हुए!सो कहिये।

उत्तर—हे शिष्य ! लक्ष्मणजीके शापसे तुलसीदासजी हुये हैं और विमल भाषामें श्रीरामचरितवर्णन कियेहैं यह प्रसंग विस्तारसे ब्रह्मसंहितामें है और वसिष्ठसंहितामें भी कहा है । यथा—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति ॥
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—वशिष्ठजीका वचन है अरुन्धती:जीसे कि हे देवि ! वाल्मीकिजी कलियुगमें तुलसीदासजी होगँये और श्रीरामचन्द्रजीकी कथा साध्वी भाषारूप करेंगे ॥ सोई कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भये ऐसा भक्त मालमें भी कहा है इससे सर्वथा निश्चय है कि तुलसीदासजी वाल्मीकिजीके अवतार हैं सो श्रीगोस्वामीजीनें अपनी रामायणमें रामावतारके विषयमें चारकल्पकी कथा वर्णन कीहै तहां प्रथम हेतु जय विजयका रावण कुंभकर्ण होना । यथा—

"द्वारपाल हरिके प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥ विप्र शापतें दूनौ भाई ॥ तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥ कनककसिपु अरु हाटकलोचन । जगत विदित सुरपति मदमोचन ॥ विजई समर वीर विख्याता ॥ धरि वराहवपु एक निपाता ॥ होइ नरहरि दूसर पुनि मारा ॥ जन प्रह्लाद सुजस विस्तारा ॥ भये निशाचर जाइ ते, महावीर बलवान ॥ कुंभकरन रावन सुभट, सुर विजई जग-जान ॥ मुक्त न भए हते भगवाना ॥ तीनि जनम द्विज वचन प्रमाना ॥ एक वार तिन्हके हित लागी ॥ धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥कस्यप अदिति तहां पितुमाता॥ दसरथ कौसल्या विख्याता ॥ एक कलप एहि विधि अवतारा ॥ चरित पवित्र किये संसारा " सो यह कथा भागवतमें प्रसिद्ध है पूर्वही कहिआयेहैं । हे शिष्य ! इसी जय विजयके लिये नारायण रामावतारको धारण करतेहैं यह कथा शिव संहितामें प्रसिद्ध है। यथा प्रमाण—

यदा स्वपार्षदौ जातौ राक्षसप्रवरौ प्रिये ॥
तदा नारायणः साक्षाद्रामरूपेण जायते ॥ ४ ॥

अर्थ—शिवजी बोले, कि हे प्रिये ! जब अपना दूनौं पार्षद जय विजय रावण कुंभकर्ण हुये तब साक्षात् श्रीमन्नारायण रामरूप होकर अवतार लिये दूसरा कारण यथा "एक कलप सुर देखि दुखारे ॥ समर जलंधरसन सब हारे ॥ संभु कीन्ह संग्राम अपारा ॥ दनुज महाबल मरे न मारा ॥ छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह ॥ जब तेहि जानेउ मरम तब, शाप कोप कर दीन्ह ॥

तासु शाप हरि कीन्ह ममाना ॥ कौतुकानधि कृपाल भगवाना ॥ तहाँ जलंधर रावन भयऊ ॥ रन हति राम परम पद दयऊ ॥ एक जनमकर कारन एहा ॥ जेहि लगि राम धरी नरदेहा " सो यह कथा कार्तिक माहात्म्यके १६ अध्यायमें प्रसिद्ध है । हे शिष्य ! इसमें विष्णु रामावतार हुये हैं तीसरा कारण नारदजीके शापसे रुद्रगण रावण कुंभकर्ण हुए हैं। यथा " नारद शाप दीन्ह एकवारा ॥ कल्प एक तेहि लगि अवतारा ॥" सो कथा दुर्वासा पुराणमें तथा शिवसंहितादिमें प्रसिद्ध है। हे शिष्य ! इसमें क्षीरसागरवासी अष्टभुजवाले "भूमा" पुरुष रामावतार हुए हैं। चौथा कारण कैकयदेशके राजा सत्यकेतुके पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन रावण कुंभकर्ण भयेहैं तब सर्वोपरि साकेतविहारी श्रीरामजी अवतार धारण किये हैं जिस रूपको देखकर सतीजीको मोह हुआ है यथा " अपर हेतु सुनु सैलकुमारी ॥ कहौं विचित्र कथा विस्तारी ॥ जेहि कारन अज अगुन अरूपा ॥ ब्रह्म भयेउ कोसलपुरभूपा ॥ जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा ॥ बंधु समेत धरे मुनिवेषा ॥ जासु चरित अवलोकि भवानी ॥ सती शरीर रहिउ बौरानी ॥' ऐसा शिवजीने कहा है एही राम शिवजीके इष्ट हैं इन्हीके नामबलसे पंचकोशी काशीजीमें सब चराचरको परमपद देतेहैं। हे शिष्य ! जब प्रतापभानु रावण होता है तब साकेतवासी श्रीरामजी आते हैं। यथा शिव संहितायाम् -

प्रतापी राघवसखा भ्रात्रा वै सह रावणः ॥
राघवेण तदा साक्षात्साकेतादवतीर्य्यते ॥ ५ ॥

अर्थ-प्रतापी रामजीके सखा जब भाईके सहित निश्चय रावण कुंभकर्ण होतेहैं तब राघव होकर साक्षात् साकेतसे आकर अवतार लेतेहैं। हे शिष्य ! यह प्रतापी श्रीरामजीके परमप्रिय सखा हैं सो एकदिन कंदुक (गेंद) खेलनेमें प्रसन्न होकर रामजीने वरदिया कि तुम जाकर भारतखण्डमें रावण हो और ७२ चौकड़ी राज करो पीछे हम आकर तुम्हारे संग घोर युद्ध करेंगे। सोई प्रतापी रावण भया है इनके लिये अनादि राम अवतार धारण करतेहैं यथा " सबकर परम प्रकासक जोई ॥ राम अनादि अवधपति सोई ॥ " इत्यादि गोस्वामीजीका भी सिद्धांत है यह अवतार सर्वोपरि है। हे शिष्य ! पूर्वोक्तनारायणसे और कृष्णसे रामजी परे हैं ऐसा नारदपंचरात्रके आनंदसंहितामें कहाहै । यथा-

द्विभुजाद्राघवो नित्यं सर्वमेतत्प्रवर्तते ॥
परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि ॥ ६ ॥

उभयपरात्मनः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट् ॥

अर्थ-द्विभुजसे श्रीराघवजी नित्य हैं सर्वोपरि हैं नारायणसे और श्रीकृष्णसे भी परे हैं दोनोंके परमात्मा श्रीरामजी हैं रामजीसे परे कोईभी नहीं हैं ऐसा निश्चय जानो इनमें पक्षपात समझना भूल है । हे शिष्य ! इस साकेत विहारी श्रीरामजीके माता पिता स्वायंभू मनु अरु शतरूपा होतेहैं । सो विस्तारसे गोस्वामीजीने वर्णन किया है और शिवसंहितामें, लोमशसंहितामें, मनुसंहितामें भी वर्णन है ।

प्रश्न-हे स्वामीजी ! गोस्वामीजीने तो रामायणमें वासुदेव मंत्र लिखा है और कहाहै कि "वासुदेवपदपंकरुह दंपति मन अति लाग ।" सो इहांपर कौन वासुदेव हैं वसुदेवके पुत्र कृष्ण वासुदेव हैं कि दूसरा कोई वासुदेव हैं सो कहिये क्यों कि मेरेको बहुत संदेह है ।

उत्तर-हे शिष्य ! वासुदेव कृष्णका भी नाम है और नारायणके भी नाम हैं और रामजीके भी नाम हैं काहेते कि भगवान् तत्त्व करके एकही हैं केवल रूप करके भिन्न हैं और वासुदेव नामके वस निवासे धातुसे सर्व व्यापी अर्थ होताहै और सर्व व्यापी नारायण, राम कृष्ण सब हैं याने भगवान्के सब स्वरूप सर्व व्यापी हैं इसमें संदेह नहीं है परन्तु इहांपर साकेत विहारी रामहीके अर्थ मुख्य है काहेसे कि मनुजीके सामने रामरूपहीसे प्रगट हुए यदि नारायण कृष्णके अर्थ होता है तो उसी रूपसे प्रगट होते सो है नहीं फिर दूसरा अर्थ करना पक्षपात है और वासुदेव नामका अर्थ शंकरजीने ऐसा कहा है श्रीभागवतके चौथे स्कंध ३ अध्यायमें । यथा शिव उवाच ॥

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान्वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मे नमसाविधीयते७॥

अर्थ-विशुद्ध सत्त्व अंतःकरण वसुदेव शब्दसे कहा है, तहां आवरण रहित पुरुष वासुदेव प्रकाश है इससे सब जीवमात्रके शुद्ध सत्त्वमें भगवान् वासुदेव विराजमान् हैं इससे ऐसे अन्तःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इंद्रियोंसे अगोचर हैं मैं उनकी प्रणामद्वारा सेवा करताहूं ॥ ऐसा कहाहै इससे इहांपर वासुदव परब्रह्म श्रीरामही हैं जिनके अंशसे कोटि २ ब्रह्मा विष्णु शिव होतेहैं ऐसा गोस्वामीजीका सिद्धांत है यथा "शंभु विरंचि विष्णु भगवाना ॥ उपजहिं जासु अंशते नाना ॥" फिर तहैं पर जानकीजीके विषयमें कहेहैं कि "वामभाग सोभति अनुकूला ॥ आदि शक्ति छबि निधि जगमूला ॥ जासु अंश उपजहिं गुन खानी ॥ अगनितलक्ष्मि उमा ब्रह्मानी ।" इस प्रकारसे कहेहैं इससे रामजी सर्वोपरिहैं ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! मनुजीने जो साकेतविहारी रामजीके लिये तप किया सो कहा प्रमाण है कहिये।

उत्तर-हे शिष्य ! पद्मपुराण उत्तरखण्डके २४२ अध्यायमें ऐसा कहा है यथा-

स्वायंभुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम् ॥
जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे ॥ ८ ॥
तेन वर्षसहस्रेण पूजितः कमलापतिः ॥
मत्तो वरं वृणीष्वेति तं प्राह भगवान् हरिः ॥ ९ ॥
ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम् ॥
पुत्रस्त्वं भव देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत ॥ १० ॥
त्वां पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तमम् ॥
भविष्यति नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम् ॥ ११ ॥
ममैव च महत्प्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे ॥
स्थितिप्रयोजने काले तत्र तत्र नृपोत्तम ॥ १२ ॥
त्वयि जाते त्वहमपि जातोस्मि तव सुव्रत ॥

अर्थ-स्वायंभू मनुजी पूर्व कल्पमें शुभ विमल गोमती गंगाकेतीर नैमिषारण्यमें द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्रको जपे एक सहस्रवर्ष। उसीसे कमलापतिका पूजन किया तब भगवान् प्रसन्न होकर बोले, कि मेरेसे वर कहो यह सुनकर स्वायंभू मनु बडें प्रसन्न होकर भगवान्से बोले, कि हे देवेश ! अच्युत भगवान् आप तीन जन्म तक मेरे पुत्र होइये ॥ काहेसे कि आपको पुत्रलालसा करके मैं भजताहूं। भगवान् बोले, कि हे नृपश्रेष्ठ ! आपके मनमें जो कुछ है वह अवश्य होयगा मेरी भी बहुत प्रीति है इससे आपके पुत्रत्व हेतु प्रयोजन काल पाकरके जहां २ आप जन्म लेंगे तहां २ हम भी पुत्र होवेंगे आपको यह बात निश्चय है ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि तवानघ ॥ १३ ॥
एवं दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥
अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायंभुवस्य च ॥ १४ ॥
रघूणामन्वये पूर्वं राजा दशरथो ह्यभूत् ॥
द्वितीयो वसुदेवोऽभूद्वृष्णीनामन्वये विभुः ॥ १५ ॥

कलेर्दिव्यसहस्राब्दप्रमाणस्यांत्यपादयोः ॥
शंभलग्रामकं प्राप्य ब्राह्मणः संजनिष्यति ॥ १६ ॥

अर्थ-साधुओंकी रक्षार्थ और दुष्टोंके विनाशार्थ धर्मसंस्थापनार्थ आपके यहां उत्पन्न होऊंगा ऐसा वर देकर तहांपर भगवान् अंतर्धान हो गये, पीछे इस स्वायंभू मनुका प्रथम जन्म रघुकुलमें राजा दशरथ हुये, दूसरे जन्ममें वसुदेव हुये, तीसरे जन्ममें कलियुगके अंतपादमें शंभलग्राममें हरिव्रत ब्राह्मण होयँगे ।

कौशल्या समभूत्पत्नी राज्ञो दशरथस्य हि ॥
यदोर्वंशस्य सेवार्थं देवकी नाम विश्रुता ॥ १७ ॥
हरिव्रतस्य विप्रस्य भार्या देवप्रभा पुनः ॥
एवं मातृत्वमापन्ना त्रीणि जन्मानि शार्ङ्गिणः ॥ १८ ॥
कैकेय्यां भरतो जज्ञे पांचजन्यांशचोदितः ॥
सुमित्रा जनयामास लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १९ ॥
शत्रुघ्नं च महाभागा देवशत्रुप्रतापनम् ॥
अनंतांशेन संभूतो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २० ॥
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः ॥

अर्थ-शतरूपा रानी राजा दशरथकी रानी कौशल्या हुई फिर वही यदुवंशकी सेवार्थ देवकी नामसे विख्यात हुई । फिर हरिव्रत ब्राह्मणकी स्त्री देवप्रभा हुई। ऐसा तीनं जन्मपर्यंत भगवान्‌की मातृत्वको प्राप्त होतीभई ॥ कैकेयीमें पांचजन्यशंखके अंशसे भरतजी हुये और सुमित्राजी शुभलक्षण करके युक्त लक्ष्मणजीको उत्पन्न करती भई ॥ और देवशत्रुओंको दुःख देनेवाले शत्रुघ्नको भी पैदा किया तिनमें शेषके अंशकरके शत्रुओंके नाशकर्त्ता लक्ष्मणजी हुए और सुदर्शनके अंशसे बड़े पराक्रमी शत्रुघ्न हुये ऐसा लिखा है ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! इहां पद्मोत्तरखण्डमें तो नारायणका अवतार कहा है फिर मनु शतरूपामें साकेतविहारी राम कैसे हुये ? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! इहां बहुत गुप्त भेद कहा है जैसे पूर्वमें गोलोकवासी कृष्णके और नारायणके माता पिता कश्यप आदिति कहि आयेहैं सोई भेद इहां पर है ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! वह भेद कौन है ? सो कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! वेदसारोपनिषद्में लिखा है कि ।

जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसृत्य पप्रच्छ को ह वै महा-न्पुरुपो यं ज्ञात्वेह विमुक्तो भवतीति स होवाच। कौशल्येयो रघुनाथ एव महापुरुपः तस्य नामरूपधामलीलामनोवचना-द्यविपयाः स पुनरुवाचेदृशं कथमहं शक्नुयां विज्ञातुं ज्ञाप-काज्ञानादिति स पुनः प्रतिवक्ति अथैते श्लोका भवंति ॥२१॥

अर्थ-जनक विदेहजी याज्ञवल्क्यजीके समीप जाकर बोले, कि निश्चयकर महान् पुरुप को है। जिनको जानकर इस संसारसे विमुक्त होतेहैं ॥ यह सुनकर योगी याज्ञवल्क्यजी बोले, कौशल्यानंदन रघुनाथ ही महान्पुरुप हैं। तिनके नाम, रूप, धाम, लीला चारो मन वचनसे अविपय (अगोचर) हैं ॥ यह सुनके फिर जनकजी बोले कि यह कैसा है मैं जानना चाहता हौं, किं जानकार ज्ञानसे कैसे जाने? सो कहिये॥ यह सुनकर वह बोले, सो इन सवका श्लोकसे विधिपूर्वक उत्तर देतेहैं सावधान होकर सुनो, काहेसे कि सूक्ष्म सिद्धांत हैं। यथा-

विरजायाः परे पारे लोको वैकुण्ठसंज्ञितः ॥
तन्मध्ये राजतेऽयोध्यासच्चिदानंदरूपिणी ॥ २२ ॥
तत्र लोके चतुर्बाहू रामनारायणः प्रभुः ॥
अयोध्यायां यदा चास्य ह्यवतारो भवेदिह ॥ २३ ॥
तदास्ति रामनामेदमवतारविधौ विभोः ॥
तन्नाम्नो नामरहितस्याम्नातं नाम तस्य हि ॥ २४ ॥

अर्थ-विरजा नदीके परे पारमें वैकुण्ठ लोक है उसके मध्यमें सच्चिदानन्दरूप श्रीअयोध्यापुरी शोभा देती है। उस लोकमें चतुर्बाहु राम नारायण प्रभु हैं सो जव अयोध्यापुरीमें रामावतार लेते हैं तव रामनारायण प्रभुके यह रामनामको धारण करते हैं क्यों धारण करतेहैं कि साकेतविहारी रामजीके नाम नाम रहित है भाव-मन वचनसे परे है उस नामको कथन करनेके लिये. भाव-सवको सूचित करनेके लिये रामनामको धारण करतेहैं। हे शिष्य! इहांपर यह सिद्धांत है कि रामनारायण प्रभु जो हैं सो साकेतविहारी रामजीके चरित्रके आचार्य्य हैं सोई अयोध्याजीमें रामावतारको धारणकर मन वचनसे परे जो नाम, रूप लीला, धाम है उसको विदित करतेहैं सोई फिर कहतेहैं ॥

दशकंठवधाद्यादिलीला विष्णोः प्रकीर्तिता ॥
स कदाचित्तुकल्पेऽस्मिन् लोके साकेतसंज्ञिते ॥ २५ ॥
पुष्पयुद्धं रघूत्तंसः करोति सखिभिः सह ॥
कस्मिन्कल्पे तु रामोऽसौ बाणजन्येच्छया विभुः ॥२६ ॥
तैरेव सखिभिः सार्द्धमाविर्भूय रघूद्वहः ॥
रावणादिवधे लीलां यथा विष्णुः करोति सः ॥
तथाऽयमपि तत्रैव करोति विविधाः क्रियाः ॥ २७ ॥
क्रियाश्च वर्णयित्वाथ विष्णुर्लीला विधानतः ॥
लीलानिर्वचनीयत्वं ततो भवति सूचितम् ॥ २८ ॥

अर्थ-रावणादिकका वध करना विष्णुलीला कहाहै सो कभी इस कल्पमें साकेत लोकमें रघूत्तम सखियोंके सहित पुष्प युद्धको करतेहैं। भाव-पुष्पसे क्रीडा करतेहैं वही साकेत विहारी यह राम बाण विद्याकी इच्छा करके सखा सखियोंके सहित रघूद्वह अवतार धारण करतेहैं और रावणादि वध लीला जैसा विष्णु करते-हैं तैसेही वह सब लीला विधान क्रिया यह रामजी भी तहैं अयोध्याजीमें नाना विधि करते हैं। विष्णुलीलाके विधानसे साकेतविहारी श्रीरामजीने अपनी क्रिपा याने साकेतके विभवलीला वर्णन करके अनिर्वचनीयत्वलीला याने जो मन वचन से परे हैं वह सूचित हैं ॥

किं चाऽऽयोध्यापुरीनाम सकेत इति चोच्यते ॥
इमामयोध्यामाख्याय साऽऽयोध्या वर्ण्यते पुनः ॥ २९ ॥
अनिर्वाच्यत्वमेतस्याऽव्यक्तमेवानुभूयते ॥
रामावतारमाधत्ते विष्णुः साकेतसंज्ञिते ॥ ३० ॥
तद्रूपं वर्णयित्वा निर्वचनीयं प्रभोः पुनः ॥
रूपमाख्यायते विद्भिर्महतः पुरुषस्य हि ॥ ३१ ॥
इत्यथर्वणवेदे वेदसारोपनिषदि प्रथमखण्डे ॥

अर्थ-किं तु जो अयोध्यापुरी नाम है वहीको साकेत ऐसा कहतेहैं इस-अयोध्यापुरीको विख्यात होनेके लिये वह अयोध्यावर्णन करतेहैं भाव भूमण्डल-वाली अयोध्यासे अनिर्वचनीय अयोध्या सूचित होती हैं और साकेतमें जो विष्णु

जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसृत्य पप्रच्छ को ह वै महान्पुरुषो यं ज्ञात्वेह विमुक्तो भवतीति स होवाच। कौशल्येयो रघुनाथ एव महापुरुषः तस्य नामरूपधामलीलामनोवचनाद्यविषयाः स पुनरुवाचेदृशं कथमहं शक्नुयां विज्ञातुं ज्ञापकाज्ञानादिति स पुनः प्रतिवक्ति अथैते श्लोका भवंति ॥२१॥

अर्थ-जनक विदेहजी याज्ञवल्क्यजीके समीप जाकर बोले, कि निश्चयकर महान् पुरुष को है। जिनको जानकर इस संसारसे विमुक्त होतेहैं॥ यह सुनकर योगी याज्ञवल्क्यजी बोले, कौशल्यानंदन रघुनाथ ही महान्पुरुष हैं। तिनके नाम, रूप, धाम, लीला चारो मन वचनसे अविषय (अगोचर) हैं॥ यह सुनके फिर जनकजी बोले कि यह कैसा है मैं जानना चाहता हौं, किं जानकार ज्ञानसे कैसे जाने? सो कहिये॥ यह सुनकर वह बोले, सो इन सबका श्लोकसे विधिपूर्वक उत्तर देतेहैं सावधान होकर सुनो, काहेसे कि सूक्ष्म सिद्धांत हैं। यथा-

विरजायाः परे पारे लोको वैकुण्ठसंज्ञितः॥
तन्मध्ये राजतेऽयोध्यासच्चिदानंदरूपिणी॥ २२॥
तत्र लोके चतुर्बाहू रामनारायणः प्रभुः॥
अयोध्यायां यदा चास्य ह्यवतारो भवेदिह॥ २३॥
तदास्ति रामनामेदमवतारविधौ विभोः॥
तन्नाम्नो नामरहितस्याम्नातं नाम तस्य हि॥ २४॥

अर्थ-विरजा नदीके परे पारमें वैकुण्ठ लोक है उसके मध्यमें सच्चिदानन्दरूप श्रीअयोध्यापुरी शोभा देती है। उस लोकमें चतुर्बाहू राम नारायण प्रभु हैं सो जब अयोध्यापुरीमें रामावतार लेते हैं तब रामनारायण प्रभुके यह रामनामको धारण करते हैं क्यों धारण करतेहैं कि साकेतविहारी रामजीके नाम नाम रहित है भाव-मन वचनसे परे है उस नामको कथन करनेके लिये. भाव-सबको सूचित करनेके लिये रामनामको धारण करतेहैं। हे शिष्य! इहांपर यह सिद्धांत है कि रामनारायण प्रभु जो हैं सो साकेतविहारी रामजीके चरित्रके आचार्य्य हैं सोई अयोध्याजीमें रामावतारको धारणकर मन वचनसे परे जो नाम, रूप लीला, धाम है उसको विदित करतेहैं सोई फिर कहतेहैं॥

दशकंठवधाद्यादिलीला विष्णोः प्रकीर्तिता ॥
स कदाचित्तुकल्पेऽस्मिन् लोके साकेतसंज्ञिते ॥ २५ ॥
पुष्पयुद्धं रघूत्तंसः करोति सखिभिः सह ॥
कस्मिन्कल्पे तु रामोऽसौ बाणजन्येच्छया विभुः ॥२६ ॥
तैरेव सखिभिः सार्द्धमाविर्भूय रघूद्वहः ॥
रावणादिवधे लीलां यथा विष्णुः करोति सः ॥
तथाऽयमपि तत्रैव करोति विविधाः क्रियाः ॥ २७ ॥
क्रियाश्च वर्णयित्वाथ विष्णुर्लीला विधानतः ॥
लीलानिर्वचनीयत्वं ततो भवति सूचितम् ॥ २८ ॥

अर्थ–रावणादिकका वध करना विष्णुलीला कहाहै सो कभी इस कल्पमें साकेत लोकमें रघूत्तम सखियोंके सहित पुष्प युद्धको करतेहैं। भाव–पुष्पसे क्रीडा करतेहैं वही साकेत विहारी यह राम बाण विद्याकी इच्छा करके सखा सखियोंके सहित रघूद्वह अवतार धारण करतेहैं और रावणादि वध लीला जैसा विष्णु करते-हैं तैसेही वह सब लीला विधान क्रिया यह रामजी भी तेहैं अयोध्याजीमें नाना विधि करते हैं। विष्णुलीलाके विधानसे साकेतविहारी श्रीरामजीने अपनी क्रिया याने साकेतके विभवलीला वर्णन करके अनिर्वचनीयत्वलीला याने जो मन वचन से परे हैं वह सूचित हैं ॥

किं चाऽऽयोध्यापुरीनाम सकेत इति चोच्यते ॥
इमामयोध्यामाख्याय साऽऽयोध्या वर्ण्यते पुनः ॥ २९ ॥
अनिर्वाच्यत्वमेतस्याऽव्यक्तमेवानुभूयते ॥
रामावतारमाधत्ते विणुः साकेतसंज्ञिते ॥ ३० ॥
तद्रूपं वर्णयित्वा निर्वचनीयं प्रभोः पुनः ॥
रूपमाख्यायते विद्भिर्महतः पुरुषस्य हि ॥ ३१ ॥
इत्यथर्वणवेदे वेदसारोपनिषदि प्रथमखण्डे ॥

अर्थ–किं तु जो अयोध्यापुरी नाम है वहीको साकेत ऐसा कहतेहैं इस-अयोध्यापुरीको विख्यात होनेके लिये वह अयोध्यावणन करतेहैं भाव भूमण्डल-वाली अयोध्यासे अनिर्वचनीय अयोध्या सूचित होती हैं और साकेतमें जो विष्णु

रामनारायण प्रभु हैं सो रामावतारको धारण करके उस मन वचनसे परे प्रभु श्रीरामजीके रूपको वर्णन करके सूचित करतेहैं जिसमें साकेतविहारी रामरूपको सब कोई जाने ऐसा अथर्वण वेदोक्तवेदसारोनिपद्के प्रथमखण्डमें कहाहै । हे शिष्य ! इस सिद्धांतको खूब ध्यान देकर विचार करो कि कैसा सिद्धांत है इसी सिद्धांतके अनुकूल पद्मोत्तरखंडका वचन है इससे साकेतविहारी रामजीका चरित्र नारायणचरित्रसे मिलाहुआ है इस भेदको केवल रसिकजन जानतेहैं ऐसे ही स्कंदपुराणके निर्वाणखण्डरामगीतामें शंकरजीका वचन है-

भार्गवोऽयं पुरा भूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः
विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना पुनः॥ ३२ ॥
संकर्षणस्ततश्चाहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम् ॥
एकमेव त्रिधा जातं सृष्टिस्थित्यंतहेतवे ॥ ३३ ॥

अर्थ-शंकरजी बोले, श्रीरामजी कि ये जो ब्रह्माजी हैं सो पूर्वकाल भार्गव (परशुराम) होकरके आपके रामनामको ग्रहण करतेभये फिर विष्णु दाशरथि राम होकर आपका रामनाम इस कालमें ग्रहण करतेहैं । और मैं संकर्षण (बल-राम) होकर आपका रामनाम ग्रहण करताहूं सर्वदा भाव-कल्प २ में तीनो होकर रामनामको धारण करता हूं । एक ही तीन रूप होवेहैं सृष्टि पालन संहारक लिये इससे विष्णुनामधारी राम हैं स्वयं नहीं । हे शिष्य ! महर्षि वाल्मीकिजीके भी एही सिद्धांत है ।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! वाल्मीकिजी कौन अवतारकी कथा वर्णन कियेहैं सो कृपाकरके कहिये ।

उत्तर-हे शिष्य ! वाल्मीकिजी साकेतही वासी रामजीके चरित्र वर्णन कियेहैं, जो कहो कि कैसे जाने जावें तो इसमें गुप्तभेद यह है कि वाल्मीकिजीने नारदजीसे प्रश्न किया कि इस काल इस लोकमें गुणवान् १ वीर्यवान् २ धर्मज्ञ ३ कृतज्ञ ४ सत्यवाक्यवाले ५ दृढव्रतवाले ६ सुंदरचरित्र करके युक्त ७ सर्व जीवके हितकरने-वाले ८ विद्वान् ९ समर्थ १० प्रियदर्शनवाले ११ आत्मवान् १२ क्रोधको जीतने-वाले १३ कांतिमान् १४ दोषरहित गुण १५ देवता और दैत्य क्रोधयुक्त किसके युद्धमें भयको प्राप्त होते हैं यह १६ गुण करके युक्त कौन नर हैं सो कहिये ? यह सुन पूर्णअधिकारी जानकर नारदजी बोले कि आपके कहेभये गुणों-करके युक्त पुरुष बहुत दुर्लभ है तो भी विचारकर कहताहूं तीनों लोकोंके जान-नवाले नारदजीने तीनों लोकोंमें विचारा तो कोई नहीं ठहरा पीछे बोले कि जैसा आपने गुण कहे हैं तैसे ही गुणोंकरके युक्त नर कहताहूं, सुनो तब नारदजीने

६४ गुण करके युक्त इक्ष्वाकुवंशमें प्रगट श्रीरामहीको बताया। हे शिष्य! इहांपर महर्षिजीके प्रश्नोत्तरमें केवल नर शब्द कहाहै और विचारकरनेसे नर रामहीके अर्थ हैं काहेसे कि परमात्माके यथार्थरूप नराकार ही कहा है। यथा–महाभारते॥ "नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः॥ नृणाति प्रापयति आनन्दमिति नरः नरति व्याप्नोतीति नरः" अर्थात् सर्व चराचरमें व्याप्त हो उसको नर सनातन परमात्मा जानना चाहिये। ऐसा आनंदसंहितामें भी कहाहै। यथा–

आनन्दो द्विविधः प्रोक्तो मूर्तश्चामूर्त एव च॥
अमूर्तस्याश्रयो मूर्तः परमात्मा नराकृतिः॥ २४॥
स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्॥
परं तु द्विभुजं रूपं तस्मादेतच्चराचरम्॥ २५॥

अर्थ–आनंद दो प्रकारका कहाहै एक मूर्त (सगुण) एक अमूर्त (निर्गुण) तिनमें निर्गुणके आश्रय सगुण हैं परमात्मा नराकार हैं। अष्टभुजवाले भूमापुरुष स्थूल हैं और चतुर्भुजवाले नारायण सूक्ष्म हैं। भाव–अष्टभुजवाले सगुण हैं चतुर्भुजवाले निर्गुण हैं और नराकार परमात्मा द्विभुज राम हैं तिन्हीसे चराचर व्याप्त है।

प्रश्न–हे स्वामी जी! नराकार नारायण नहीं हैं क्या रामजी हैं।

उत्तर–हे शिष्य! नराकार यथार्थ राम ही हैं काहेसे कि द्विभुज स्वरूप हैं और नारायणादिकरूप चतुर्भुज हैं इससे नराकार सिद्ध नहीं होताहै। ऐसे तो नरशब्दसे परमात्माका बोध होता है सो सब स्वरूप हैं परन्तु वाल्मीकिजीके कथनसे रामरूपहीका बोध होताहै सो गुप्त है काहेसे कि, महर्षिजीने सर्वत्र रघुनाथजीको मनुष्य ही करके वर्णन कियाहै और श्रीरामजीने भी ब्रह्माजीसे अपनेको मनुष्य ही आत्मा कहा सो बात युद्धकांडमें प्रसिद्ध है जब ब्रह्माजीने रामजीसे कहा कि आप संसारके कर्ता हैं रुद्रोंमें आठवें रुद्र आप ही हैं, चन्द्र सूर्य आपके नेत्र हैं लोकोंके आदि अंतमें आपही देख पडतेहैं आप मनुष्य सरीखे जानकीजीको कैसे त्यागतेहैं। यह सुनकर रामजी बोले कि–

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्॥
योऽहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रवीतु मे॥ २६॥

अर्थ–हम आत्माको मानुष मानतेहैं यदि कहो कि मनुष्यमें कौन आत्मा है राम यदि फिर भी कहो कि तीन रामोंमें कौन राम तो दशरथात्मज राम यह सुन ब्रह्माजी चुप होगये तब रामजी बोले,कि जो मैं हूं जहांसे जिस लिये आया हूं वह आप कहिये

तब ब्रह्माजी बोले कि " भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः " ऐसा कहा काहेसे कि ब्रह्माजी तो नारायण ही स्वरूपतक पहुंचे हैं और नारायण श्रीरामजीके अंश हैं । यथा भारद्वाजसंहितायां-

नारायणोपि रामांशः शंखचक्रगदाब्जधृक् ॥
चतुर्भुजस्वरूपेण वैकुण्ठे च प्रकाशते ॥ ३७ ॥
अवतारा बहवः सति कलाश्चांशविभूतयः ॥
राम एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-नारायण भी रामजीके अंश हैं और शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त चतुर्भुजस्वरूपसे वैकुंठमें प्रकाश करतेहैं । कला अंश विभूति आदि भेदकरके बहुत अवतार हैं और रामजी जो हैं सो ही परमब्रह्म हैं सच्चिदानंद, मायासे रहित इससे नररूप नित्य राम ही परब्रह्म हैं यथा ॥ वसिष्ठसंहितायां ६ अध्याये भरद्वाजं प्रति वासिष्ठवाक्यम्-

पश्चिमे चोत्तरे भागे पूर्वे पुर्याः सरित्तटा ॥
वहति श्रीमती नित्या सरयूर्लोकपावनी ॥ ३९ ॥
चिंतामणिमयी नित्या चतुर्विंशतियोजना ॥
परितो भात्ययोध्याया भूमिः सच्चिन्मयी मृदुः ॥ ४० ॥
यत्र वृक्षलतागुल्मपत्रपुष्पफलादिकम् ॥
यत्किंचित्पक्षिभृंगादि तत्सर्वं भाति चिन्मयम् ॥ ४१ ॥
नित्या इक्ष्वाकवः सर्वे नित्या रघुकुलोद्भवाः ॥
नित्योऽहं मुनयो नित्या नित्याः सर्वे च मंत्रिणः ॥ ४२ ॥
अयोध्यावासिनो नित्या ब्राह्मणप्रमुखास्तथा ॥
नित्या भृत्याश्च दास्यश्च श्रीराजकुलसेवकाः ॥ ४३ ॥

अर्थ-पश्चिम और उत्तरभागमें तथा पूर्वमें सरित्तट लोकपावनी श्रीमती नित्य सरयूजी वहती हैं । चिंतामणिमयी नित्या सत्यस्वरूपा २४ योजन ९६ कोश चौड़ी गोलाकार सच्चिदानंदमयी अति कोमलभूमिकरके अयोध्यापुरी शोभित है । जहां वृक्ष, लता, गुल्म, पत्र, पुष्प, फलादिक सब जो कुछ पक्षी भृंगादि हैं वह सब सच्चिदानंदमय शोभित हैं । इक्ष्वाकु नित्य हैं सब नित्य रघुवंशी

हैं वशिष्ठजी कहतेहैं कि मैं भी नित्य हूं सब मुनि लोग नित्य हैं आठों मंत्री नित्य हैं। अयोध्यावासी सब नित्य हैं ब्राह्मण सब नित्य हैं नौकर चाकर जितने राजकुलके सेवक हैं सो सब नित्य हैं॥

कौशल्या श्रीमती नित्या नित्यो दशरथो नृपः॥
कैकेयी च सुमित्राद्या नित्या श्रीराजयोषितः॥ ४४॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नो भरतस्तथा॥
नित्या रघुकुलोद्भूता नित्यास्सर्वे कुमारकाः॥ ४५॥
नित्यं दशरथस्यांके स्थितस्य परमात्मनः॥
तावद्ब्रह्ममहेशाद्याः सेन्द्रा ब्रह्माण्डकोटयः॥ ४६॥
कटाक्षाद्रामचन्द्रस्य लयं यावद्भवंति च॥
रामस्य नाम रूपं च लीलाधाम परात्परम्॥
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥ ४७॥

अर्थ-श्रीमती कौशल्या नित्य हैं राजा दशरथजी नित्य हैं और कैकेयी सुमित्रा आदिले सब राजस्त्री नित्य हैं। श्रीरामजी लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी तथा भरतजी नित्य रघुकुलमें सब राजकुमार हैं नित्य दशरथजी के गोदमें परमात्मा श्रीरामजी स्थित हैं। तबतक ब्रह्मा महेशादिक देव सब इन्द्र सहित कोटि २ ब्रह्माण्ड श्रीरामचन्द्रजीके कटाक्षसे नाश और उत्पन्न होतेहैं॥ श्रीरामजीके नाम रूप लीला धाम परेसे परे यह चारो नित्य सच्चिदानन्दके स्वरूप हैं। हे शिष्य! इन सब प्रमाणोंसे नित्य दशरथात्मज नराकार परब्रह्म हैं सोई सिद्धांत महर्षि वाल्मीकिजीका है काहेसे कि रावणका मृत्यु नरहीके हाथसे है सोई गोस्वामीजीका मत है यथा-"इच्छामय नरवेष सँवारे॥ होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥" यह वचन मनुजीसे रामजीका है फिर "नरके कर आपन वध वांची॥" ऐसा कहाहै इससे नररूप सनातन परमात्मा राम ही हैं दूसरा नहीं यह निश्चय है इसीसे वाल्मीकिजीने रामायणमें रावण कुम्भकर्णके पूर्वजन्मके वृत्तान्त नहीं लिखे हैं कि जय विजय हैं कि जलंधरहै कि रुद्रगण है कि प्रतापभानु रावण है सो कुछ नहीं कहा और न दशरथहीजीके वृत्तान्त कहा कि कश्यप अदिति हैं कि मनु शतरूपा हैं काहेसे किइन सबके नाम कहनेसे प्रसिद्ध होजायगा और महर्षिजीका गुप्त सिद्धांत है दूसरे माधुर्य्य पक्ष है काहेसे कि श्रीरामजी अनन्तमाधुर्य्यस्वरूप ही हैं यथा महेश्वरतंत्रे-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ॥
ब्रह्मनारदसंवादं महापातकनाशनम् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच नारदं प्रति ॥

नारायणमुखोद्गीर्णं प्रोच्यते यच्छ्रुतं मया ॥
ततः किंचित्प्रवक्ष्यामि शृणु ब्रह्मन् महाऋषे ॥ ४९ ॥
चिन्मयानंदसारात्माऽनन्तमाधुर्य्यविग्रहः ॥
परिपूर्णतम ब्रह्म स्वयं रामः सनातनः ॥ ५० ॥

अर्थ–शिवजी बोले हे देवि ! सुनो मैं गुप्तसे भी उत्तम गुप्त कहताहूं ब्रह्मा और नारदका संवाद जो कि महापापका नाशकरने वाला है। ब्रह्माजी बोले हे महाऋषे! सुनो वैकुण्ठमें नारायणके मुखसे जो कुछ मैंने सुनाहै उससे कुछ कहताहूं। सच्चिदानंद सारके सार अनंत माधुर्य्यके स्वरूप परिपूर्णतम स्वयं सनातन ब्रह्म रामजी हैं इसीसे महर्षिजीने सर्वत्र माधुर्य्य ही रूप वर्णन किया है इसी कारणसे महर्षिजीको लक्ष्मणजीने शाप दिया है सो ब्रह्मसंहितामें प्रसिद्ध है।

प्रश्न–हे स्वामीजी यह कथा कैसी है सो कहिये।

उत्तर–हे शिष्य ! यह कथा ऐसी है कि एक दिन वाल्मीकिजी साकेतलोक गये श्रीरामजीने हाथजोड़ प्रणाम किया महर्षिजीने आशीर्वाद दिया कि हे राजकुमार चिरंजीव रहो यह सुनके लक्ष्मणजीको क्रोध हुवा और बोले कि आपने रामायणमें तो सर्वत्र राजकुमार ही करके रामजीको वर्णन कियाहै सोई दृष्टि इहां भी है इससे आप फिर राजकुमारके ऐश्वर्ययुक्त चरित्र भाषामें वर्णन करो सोई तुलसीदास होकर चारोंकल्पके कथा दर्शायके रामयशवर्णन किया है और श्रीरामजीका स्वभाव यह है कि जो कोई ऐश्वर्ययुक्त बड़ाई करतेहैं तो सकुचाय जातेहैं सो विनयमें कहाहै "सहज सरूप कथा मुनिवरनत रहत सकुचि सिरनाई ॥ केवटमीत कहे सुख मानत वानरबंधु बड़ाई" ऐसा कहाहै इससे बड़ेका यही स्वभाव है कि प्रशंसा करनेसे सकुचि जातेहैं इसीसे रामजीने अपनेको स्वयं ब्रह्म कहीं नहीं कहाहै एभी बड़ेका स्वभाव है।

प्रश्न–हे स्वामी जी जब दूसरे जन्ममें मनु शतरूपा वसुदेव देवकी हुएतो रामजी कृष्णावतार धारण किये कि नहीं सो कहिये।

उत्तर–हे शिष्य ! भुशुण्डिरामायणमें ऐसा लिखा है कि ॥

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा ॥
रामस्यांशांशसंभूतः कृष्णो भवति द्वापरे ॥ ५१ ॥
सीतायाश्च त्रयोप्यंशाः श्रीभूलीलादिभेदतः ॥
श्रीर्भवेद्रुक्मिणी भूः स्यात्सत्यभामा दृढव्रता ॥ ५२ ॥
लीला स्याद्राधिका देवी सर्वलोकैकपूजिता ॥
तप्तकांचनगौरांगी शक्तीनां शक्तिदायनी ॥
कोटिलक्ष्मीसखीवृन्दसीमंतोत्तंशमैथिली ॥ ५३ ॥

अर्थ-तहां आनंदपूर्वक श्रीराधिकाजी श्रीजानकीजीके अंशसे उत्पन्न होतीहैं और श्रीरामजीके अंशांशसे द्वापरमें श्रीकृष्णजी होतेहैं। श्रीसीताजीके अंशसे श्रीदेवी भूदेवी लीलादेवी तीनों हैं तिनमें श्रीलक्ष्मी रुक्मिणी हैं, भूदेवी दृढव्रतवाली सत्यभामा हैं और लीलादेवी सबलोकों करके पूजित श्रीराधिकाजी हैं ॥ तप्त सुवर्णसे गौरांगी सब देवी दुर्गा लक्ष्मी सरस्वती आदिशक्तियोंको भी शक्तिदेनेवाली कोटि लक्ष्मी और सखिवृंदसे सेवित हैं श्रीसीताजी और ये सब अंशसे भी होतीहैं ऐसा कहाहै इससे कृष्णजी भी रामहीके अंश हैं इसमें संदेह करना वृथा है फिर भी सामवेदसुदर्शनसंहितामें है ॥

मत्स्यश्च रामहृदयं योगरूपी जनार्दनः ॥
कूर्मश्चाधारशक्तिश्च वाराहो भुजयोर्बलम् ॥ ५४ ॥
नारसिंहो महाकोपो वामनः कटिमेखला ॥
भार्गवो जंघयोर्जातो बलरामश्च पृष्ठतः ॥ ५५ ॥
बौद्धश्च करुणा साक्षात्कल्किश्चित्तस्य हर्षतः ॥
कृष्णः शृंगाररूपश्च वृंदावनविभूषणः ॥
एते चांशकलाः सर्वे रामस्तु भगवान् स्वयम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-मत्स्यावतार श्रीरामके हृदयसे योगरूप जनार्दन भगवान् हैं और कूर्मावतार रामजीके आधार शक्ति हैं वाराहभगवान् दोनों भुजाके बल हैं नरसिंह रामजीके महाक्रोध हैं और वामनजी कटिसे परशुरामजी दोनों जंघाओंसे हुयेहैं बलरामजी रामजीके पीठसे हैं और बौद्धभगवान् गयाजीवाले रामजीके साक्षात्करुणा हैं और कल्कि चित्तके हर्षसे हुये हैं श्रीकृष्णभगवान् वृंदावनके विभूषण श्रीरामजीके शृंगाररूप हैं। भाव-दंडकवनवासी ऋषियोंके लिये शृंगार अवतार धारणकरके सब गोपियोंको सुख दिया यह कथा विस्तारपूर्वक महारामायणमें

और आदि रामायणमें वर्णन की है ये सब अंशकला अवतार हैं और रामजी तो स्वयं भगवान् हैं। फिर भी शिवसंहिताके पंचम पटल २ अध्यायमें ऐसा कहा है कि-

अयोध्यापतिरेव स्यात्पतीनां पतिरीश्वरः ॥
अन्येषां मथुरादीनां रामांशाः पतयो यतः ॥ ५७ ॥
अवतारास्तु बहवः कला अंशा विभूतयः ॥
रामो धनुर्धरः साक्षात्सर्वेशो भगवान् स्वयम् ॥ ५८ ॥
भोगस्थानपराऽयोध्या लीलास्थानं त्विदं भुवि ॥
भोगलीलापती रामो निरंकुशविभूतिकः ॥ ५९ ॥
भोगस्थानानि यावंति लीलास्थानानि यानि च ॥
तानि सर्वाणि तस्यैव पुरो व्याप्यानि सर्वशः ॥ ६० ॥
स बाह्याभ्यंतरं कृत्स्न आनन्दरसस्यन्दितः ॥
मधूदधिरिवापारो राम एव परः पुमान् ॥ ६१ ॥

अर्थ-शिवजीके वचन हैं पार्वतीसे कि अयोध्यापति रामही हैं पतियोंका पति ईश्वर दूसरा मथुरादिके पति कृष्णादिक स्वरूप सब रामजीके अंश हैं। अवतार तो बहुत हैं कला अंश विभूतिवाले और श्रीरामजी धनुर्धर साक्षात् सर्वके ईश्वर स्वयं भगवान् हैं॥ भोगस्थानमें परा अयोध्यापुरी है और लीलास्थान भूमण्डलमें यह अयोध्यापुरी है श्रीरामजी भोग और लीला दोनों अयोध्यापुरीके पति हैं और दोनों अयोध्याके ऐश्वर्य अखण्ड हैं। भोगस्थानोंमें जितने विभव हैं लीलास्थानोंमें भी जौन हीहै वही सब ऐश्वर्य: तिनके ही पुरीमें सर्वत्र व्याप्त होरहेहैं। सर्वानंदरसरूपकरके अयोध्या पूरित है मधुसागरके समान अपार है तिनमें पर पुरुष एक राम ही हैं दूसरा नहीं फिर भी उसी शिवसंहितामें लिखा है। यथा-

द्विभुजो जानकीजानिः सदा सर्वत्र शोभते ॥
भक्तेच्छातो भवेदेष वैकुण्ठे तु चतुर्भुजः ॥
कल्पितं चापरं रूपं नित्यं द्विभुजमेव तत् ॥
परमं रससंपन्नं ध्येयं योगविदां वरैः ॥

अर्थ-जानकीजीवन श्रीरामजी सदा द्विभुजस्वरूपसे शोभादेतेहैं और भक्तोंकी इच्छाकरके वह चतुर्भुज नारायण वैकुंठवासी हुये हैं॥ और सबरूप केवल भक्तोंके

लिये प्रभुने कल्पना किया है यथा "उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना" इस श्रुतिके अनुसार और द्विभुजस्वरूप नित्य है वह परम रसमय है सब योगियों करके ध्यान किये जातेहैं। फिर भी अगस्त्यसंहितामें लिखाहै कि २४ चौबीशों अवतार श्रीरामजीके, सामने हाथजोडे खड़े हैं जहां जिसको रामजीकी आज्ञा होतीहै सो अवतार लेकर संपूर्ण कार्यकरके फिर साकेतलोकमें रामजीके सामने पहुंच जाते हैं यह सिद्धांत अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीसे कहाहै सो थोडा लिखतेहैं एक समय सब ऋषि मुनि लोग रामनवमीके दिन अयोध्याजीमें आये और सरयूमें स्नान कर संध्योपासनादि नित्यकर्म करके सब ऋषियोंने नारदजीसे प्रश्न किया कि श्रीरामपरब्रह्मका यथार्थ स्वरूप क्या है सो कहिये ? तब परमतत्त्वके ज्ञाता श्रीनारदजी बोले। यथा-

श्रीकौशलस्वरूपं च श्रोतव्यं भावसंयुतम् ॥
येऽवताराः समाख्यातास्तस्मिंस्तस्मिंयुगे युगे ॥ ६२ ॥
साकेतवासीपुरुषात्तथा तज्जातिभेदतः ॥
संभवंति सदा ते वै ह्यवतारा न संशयः ॥ ६३ ॥
सावधानेन तत्सर्वं शृणुध्वं ब्राह्मणा शुभम् ॥
साकेताहं सतोत्पन्नो हंसो ज्ञानेन सागरः ॥ ६४ ॥
कुमारं बोधयामास विज्ञानार्थं सुनिश्चितम् ॥
श्रीसाकेतनिवासिनां कुमारेभ्यः सदा मुने ॥ ६५ ॥
सनकाद्याः समुद्भूता वेदवेदांगपारगाः ॥
श्रीसाकेतस्थविप्रेण वामनेन सहस्रशः ॥ ६६ ॥
वामनाख्याऽवतारास्तु संभवंति युगे युगे ॥
विमला नरसिंहाभ्यां नृसिंहो जायते सदा ॥ ६७ ॥
स्वभक्तरक्षणार्थाय कल्पे कल्पे न संशयः ॥
श्रीकृष्णाद्यावताराणां संख्या कर्तुं न शक्यते ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवंति युगे युगे ॥ ६८ ॥

अर्थ-नारदजी बोले कि श्रीरामजीके परस्वरूप भाव संयुक्त सुनो काहेसे कि सुनवे योग्य है जितने अवतार विख्यात हैं और जिस २ युगमें होतेहैं वह सब साकेतवासी पुरुषोंके अंशसे तथा जितने जाति भेदसे निश्चय करके सर्वदा सब

अवतार उत्पन्न होतेहैं इसमें संदेह नहीं। नारदजी बोले कि हे ब्राह्मणों ! आप सब सावधान होकर सुनो। साकेतसे में और हंसावतार ज्ञानके सागर उत्पन्न हुयेहैं और कुमारको ज्ञानबोध करते भये निश्चय करके । श्रीसाकेतनिवासी कुमारोंसे सर्वदा सनकादि चारोंभाई वेदवेदांगके जाननेवाले उत्पन्न हुये हैं । श्रीसाकेतके वासी हजारों वामनसे वामनावतार युग २ में होतेहैं तैसे ही हजारों नृसिंहसे नृसिंह अवतार अपने भक्तरक्षार्थ कल्प २ में होतेहैं। कृष्णादि अवतारोंकी गिनती कर नहीं सकतेहैं सर्व धर्मसंस्थापनार्थ युग २ में उत्पन्न होतेहैं। हे शिष्य ! इसके आगे और भी विस्तारसे वर्णन किया है । कि साकेतलोकमें हजारों परसुराम हैं, हजारों विष्णुनारायणके अवतार राम हैं हजारों मत्स्यावतार हैं, कूर्मावतार हैं, बौद्धावतार हैं, वाराहअवतार हैं, कल्कीअवतार हैं, हजारों नारायण हैं, विष्णुहैं, ब्रह्माजी हैं, शिवजी हैं, महा विष्णु हैं, महा शंभु हैं याने कुछ संख्या नहीं है सब श्रीरामजीके सामने हाथ जोडे खडेहैं । हे शिष्य ! यही सिद्धांत प्रहलादजीके अवतार कबीरजीके हैं कि ॥

सब अवतारं जासु महिमंडल अनंतखडो कर जोरे ॥
अद्भुत अगम अथाह रचोहे ई सब सोभा तोरे ॥

जहां सतगुरु खेल ऋतु वसंत । तहँ परम पुरुष सब साधु संत ॥ वह तीनलोक ते भिन्न राज ॥ तहँ अनहद धुन चहुं पास बाज ॥ दीपक बरे जहं निराधार ॥ विरला जन कोई पाव पार ॥ जहं कोटि कृष्ण जोरे दुहाथ ॥ जहं कोटि विष्णु नावें सुमाथ ॥ जहँ कोटि ब्रह्मा पढें पुराण ॥ जहँ कोटि महादेव धरें ध्यान ॥ जहँ कोटि सरस्वती करें गान ॥ जहँ कोटि इन्द्र गावने लाग॥ जहँ गण गन्धर्व मुनि-गनि आहि ॥ सो तहंवा प्रगट आपु आहि ॥ तहँ चोवा चन्दन अरु अबीर ॥ तहं पुहुप वास भरि अति गंभीर ॥ जहँ सुरति सुरंग सुगन्ध लीन ॥ सब वही लोकमें वास कीन ॥ मैं अजरदीप पंहुचो सुजाइ ॥ तहँ अमर पुरुषके दरश पाइ ॥ सो कहइ कबीर हृदया लगाइ ॥ यह नरक उधारन नाम जाइ ॥ ऐसा कहा है और गोस्वामीजीके रामायणमें भी यही सिद्धांत है । यथा-" राम काम शत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥ शक्र कोटि शत सरिस विलासा ॥ नभ शत कोटि अमित अवकासा ॥ मरुत कोटि शत विपुल बल, रविशत कोटि प्रकाश ॥ शशि शत कोटि सुशीतल, शमन सकल भवत्रास ॥ काल कोटि शत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ॥ धूम केतु शत कोटि सम, दुराधर्ष भगवन्त ॥ प्रभु अगाध शत कोटि पताला ॥ शमन कोटि शत सरिस कराला ॥ तीरथ अमित कोटि शत पावन ॥ नाम अखिल अघ पूग नशावन ॥ हिमगिरि कोटि

अचल रघुवीरा ॥ सिन्धु कोटि शत सम गंभीरा ॥ कामधेनु शत कोटि समाना सकल काम दायक भगवाना ॥ शारद कोटि अमित चतुराई॥ विधि शत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥ विष्णु कोटि शत पालन कर्ता ॥ रुद्र कोटि शत सम संहर्ता॥ धनद कोटि शत सम धनवाना ॥ माया कोटि प्रपंच निधाना ॥ भारधरन शतकोटि अहीशा ॥ निरवधि निरुपम प्रभु जगदीशा ॥ निरुपम न उपमा आन रामसमान राम निगम कहे । जिमि कोटि शत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥'' ऐसा कहा है इससे रामजीके समान राम ही हैं ऐसा वेद कहता है दूसरी उपमा नहीं है यदि मूर्खतासे रामजीके समान दूसरेको कहै तो लघुता है जैसे असंख्य कोटि जुगुनूके समान सूर्यको कहना तुच्छ है सोई जानना चाहिए फिर भी कहा है यथा– "राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम ॥ अपर नाम उडगन विमल, वसहु भगत उर व्योम ॥ " ऐसा कहा है इससे गोस्वामीजीका भी सिद्धांत वही है जोकि पूर्व ही कहिआयेहैं सोई फिर सदा शिवसंहितामें शेषजीने वेदसे कहा है । यथा–

भानुकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिप्रमोदकम् ॥
इन्द्रकोटिसदामोदं वसुकोटिवसुप्रदम् ॥ ६९ ॥
विष्णुकोटिप्रतिपालं ब्रह्मकोटिविसर्जनम् ॥
रुद्रकोटिप्रमर्दं वै मातृकोटिविनाशनम् ॥ ७० ॥
भैरवकोटिसंहारं मृत्युकोटिविभीषणम् ॥
यमकोटिदुराधर्षं कालकोटिप्रधावकम् ॥ ७१ ॥
गंधर्वकोटिसंगीतं गणकोटिगणेश्वरम् ॥
कामकोटिकलानाथं दुर्गाकोटिविमोहनम् ॥ ७२ ॥
सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्दैकदायकम् ॥
कौशल्यानंदनं रामं केवलं भवखण्डनम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–कोटि सूर्यके समान प्रकाश हैं, कोटि चन्द्रके समान आनन्द (शीतल) हैं, कोटि इन्द्रके समान सदा आनंद हैं , कोटि वसुके समान द्रव्यको देनेवाले हैं, कोटि विष्णुके समान पालन कर्त्ता हैं,कोटि ब्रह्माके समान सृष्टिकर्त्ता हैं,कोटि शिवके समान संहारकर्त्ता हैं कोटि मातृके समान नाशकर्त्ता हैं, कोटि भैरवके समान संहारकर्त्ता हैं, कोटि मृत्युके समान सबको भक्षण करनेवाले हैं कोटि यमके समान महा कठिन हैं, कोटि कालके समान दौड़नेवाले हैं कोटि गंधर्वके समान गानविद्याम

निपुण हैं, कोटि गणके समान गणेश्वर (गणेश) हैं, कोटि कामके समान कला-नाथ हैं, कोटि दुर्गाके समान विमोहकरनेवाले हैं, सर्व सौभाग्यके स्थान सर्वआनं-दके देनेवाले हैं, कौशल्यानंदन श्रीरामजी केवल संसारके जन्म मरण नाश करने वाले हैं। हे शिष्य ! शिवसंहितामें लिखा है कि विष्णु नारायण कृष्णादि सब अवतार रामनामको जपते हैं और हाथजोड़े सामने खड़े हैं यथा-शिवसंहितायां पंचमपटले द्वितीयाध्याये श्रीशिव उवाच पार्वतीं प्रति-

आसीनं तमयोध्यायां सहस्रस्तंभमण्डिते ॥
मण्डपे रत्नसंज्ञे च जानक्या सह राघवम् ॥ ७४ ॥
मत्स्यकूर्मकिर्य्यनेको नारासिंहोऽप्यनेकधा ॥
वैकुंठोऽपि हयग्रीवो हरिः केशववामनौ ॥ ७५ ॥
यज्ञो नारायणो धर्मपुत्रो नरवरोऽपि च ॥
देवकीनन्दनः कृष्णो वासुदेवो बलोऽपि च ॥ ७६॥
पृश्निगर्भो मधून्माथी गोविंदो माधवोऽपि च ॥
वासुदेवो परोऽनन्तः संकर्षण इरापतिः ॥ ७७ ॥
प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धश्च व्यूहास्सर्वेऽपि सर्वदा ॥
रामं सदोपतिष्ठंते रामादेशे व्यवस्थिताः ॥ ७८ ॥
एतैरन्यैश्च संसेव्यो रामो नाम महेश्वरः ॥
तेषामैश्वर्यदातृत्वात्तन्मूलत्वान्निरीश्वरः ॥ ७९ ॥

अर्थ-हजारों खंभकर शोभित रत्नमण्डपमें श्री अयोध्याजीमें जानकीजीके सहित रामजीको बैठे हुए सामने मत्स्य कूर्म, वाराह, नरसिंह अनेकन वैकुण्ठ भग-वान्भी, हयग्रीव, हरि, केशव, वामन, यज्ञ नारायण धर्म पुत्र नरश्रेष्ठ भी और देवकी-पुत्र कृष्णजी , वासुदेव, बलदेव भी और पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविंद, माधव भी और वासुदेव पर प्रभु अनंत, संकर्षण, लक्ष्मीपति, प्रद्युम्न भी, अनिरुद्ध चतुर्व्यूह सब सर्वदा श्रीरामजीके सामने खडे हैं आज्ञामें स्थित हैं जिनको जो रामाज्ञा होती है सो सब करतेहैं इतना जो कहि आये हैं और अन्य सब श्रीराम नाम महा ईश्वर सेवते हैं भाव-सबकोई रामनाम जपतेहैं तिन सबको ऐश्वर्य देनेसे रामजी पर ब्रह्म सबके मूल हैं और रामजीके ईश्वर कोई नहीं हैं भाव रामजी प्रथम कहेहुये सबके ईश्वर हैं इससे रामजीसे परे कुछ नहीं है फिर भी शिवजी बोले यथा-

इन्द्रनामा स इन्द्राणां पतिस्साक्षी गतिः प्रभुः ॥
विष्णुस्स्वयं स विष्णूनां पतिर्वेदांतकृद्विभुः ॥ ८० ॥
ब्रह्मा स ब्रह्मणां कर्त्ता प्रजापतिपतिर्गतिः ॥
रुद्राणां स पती रुद्रो रुद्रकोटिनियामकः ॥ ८१ ॥
चन्द्रादित्यसहस्राणि रुद्रकोटिशतानि च ॥
अवतारसहस्राणि शक्तिकोटिशतानि च ॥ ८२ ॥
इन्द्रकोटिसहस्राणि विष्णुकोटिशतानि च ॥
ब्रह्मकोटिसहस्राणि दुर्गाकोटिशतानि च ॥ ८३ ॥
महाभैरवकल्याणी कोटचर्बुदशतानि च ॥
गंधर्वाणां सहस्राणि देवकोटिशतानि च ॥ ८४ ॥

अर्थ-सोई रामजी इन्द्रनामसे सब इन्द्रोंके पति हैं, साक्षी हैं, गति हैं प्रभु हैं, फिर वही रामजी स्वयं विष्णु हैं और सब विष्णुके पति हैं, वेदांतशास्त्रके कर्त्ता समर्थ हैं। वही रामजी स्वयं ब्रह्मा हैं और सब ब्रह्माके कर्त्ता हैं। प्रजापतियोंके पति, गति हैं फिर वही रामजी रुद्र हैं सब रुद्रोंके पति हैं कोटि रुद्रोंके नियामक हैं। हजारों चन्द्र सूर्य सैकडों कोटि शिवके समान रामजी हैं, हजारों कोटि अवतारके समान हैं, सौ कोटि शक्तिके समान हैं। हजारों कोटि इन्द्रके समान हैं. सौ कोटि विष्णुके समान हैं, हजारों कोटि ब्रह्माके समान हैं, सौ कोटि दुर्गाके समान हैं॥ शिवजी बोले हे कल्याणि! सौ कोटि अर्बुद महा भैरवके समान रामजी हैं। हजारों गंधर्व सौ कोटि देवताओंके समान हैं। हे शिष्य! यह रामजीके आश्चर्य्य ऐश्वर्य वर्णन हैं पुनः ॥

वेदाः पुराणशास्त्राणि तीर्थकोटिशतानि च ॥
देवब्रह्ममहर्षीणां कोटिकोटिशतानि च ॥ ८५ ॥
निर्मत्सरैश्च विद्वद्भिर्मंत्रार्थप्रयतैरपि ॥
प्रोच्यंते यानि तान्येव रामांशाद्ब्रह्मवादिभिः ॥ ८६ ॥
यं वेदांतविदो ब्रह्म वदंति ब्रह्मवादिभिः ॥
परमात्मेति योगीन्द्रा भक्तास्तु भगवानिति ॥
सभां यस्य निषेवंते स श्रीराम इतीरितः ॥ ८७ ॥

अर्थ-वेद ४ पुराण १८ शास्त्र ६ सौ कोटि तीर्थके समान पवित्र रामनाम है देवर्षि ब्रह्मर्षि महर्षियोंके सैकडोंर कोटिके समान मंत्रार्थ प्रतिपादन करनेमें रामजी विद्वान् हैं और निर्मत्सर हैं पूर्वोक्त जो सब कहे हैं वही सब रामजीके अंशसे हैं ऐसा ब्रह्मवादी सब कहते हैं। जिनको वेदांत ज्ञाता ब्रह्मवादी लोग परब्रह्म कहतेहैं उन्हींको योगी लोग परमात्मा कहतेहैं और भक्त सब भगवान् ऐसा कहतेहैं जिनको नारायण विष्णु कृष्णादिक अवतार सब सेवा करतेहैं वह श्रीराम ऐसा कहतेहैं श्रीरामजीके समान परत्व किसीका नहीं है यह निश्चय है इसमें पक्षपात समझना अथवा संदेह करना वृथा है ऐसा ही महाशंभु संहितामें, अगस्त्यसंहितामें, शेष संहितामें, भरद्वाज संहितामें, वसिष्ठसंहितामें, सुन्दरी तंत्रादिमें वर्णन है केवल ग्रंथ-विस्तार होनेके भयसे नहीं लिखतेहैं थोडेहीमें जानलो।

प्रश्न-हे स्वामी जी ! अब आप कृपाकरके श्रीसाकेतलोकका वर्णन कीजिये कहांहै कैसा है। सो विस्तारसे कहिये मेरेको सुननेकी बहुत इच्छा है

उत्तर-हे शिष्य ! एक दिन वेदको संदेह हुआ कि सबसे परे रूप, लीला धाम नाम कौन है इस बातको निर्णय करनेके लिये सब जीवोंके आचार्य जो शेषजी हैं उनसे पूछा है तब अनन्त शेषजीने उत्तर दिया। यथा-सदाशिवसंहितायाम्-

महर्लोकः क्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः ॥ ८८ ॥
कोटिद्वयेन विख्यातो जनलोको व्यवस्थितः ॥
चतुष्कोटिप्रमाणस्तु तपोलोको विराजितः ॥ ८९ ॥
उपरिष्टात्ततः सत्यमष्टकोटिप्रमाणतः ॥
आपः प्रव्याप्तकौमारः कोटिषोडशसंभवः ॥ ९० ॥
तदूर्ध्वं परिसंख्यातो ह्युमालोकस्सुनिष्ठितः ॥
शिवलोकस्तदूर्ध्वंतु भक्त्या च समागतः ॥ ९१ ॥
विश्वस्य पुरतो वृत्तिः शिवस्य पुरतो वहिः ॥
एतस्माद्वहिरावृत्तिः सप्तावरणसंज्ञकः ॥ ९२ ॥

अर्थ-पृथिवीसे ऊपर महर्लोक एक कोटि कोश प्रमाण है और जनलोक दो कोटि कोश विख्यात है, तपलोक चारकोटि कोश प्रमाण है, उससे ऊपर ब्रह्माजीके स्थान सत्यलोक आठ कोटिप्रमाणसे है। जलकरके व्याप्त तहांसे कुमारलोक ऊपर षोडश कोटि कोश पर शोभित है, उससे ऊपर पूर्वोक्त संख्या करके युक्त उमालोक है, उससे ऊपर शिवलोक है, भक्तिसे मिलाहुआ है संसारके

भीतर याने प्रकृतिके भीतर और शिवलोकसे बाहर इससे भीतर सप्तावरण कहातहि भाव-शिव लोक और उमालोक दोनोंके मध्य सामान्य सप्तावरण है इहांसे ऊपर सप्तावरण कहां तक है सो कहते हैं। यथा-

तदूर्ध्वं कोटिपंचाशत्क्रमाद्दशगुणात्परम्॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खमहं च त्रिधापरम् ॥ ९३ ॥
महामूलेन प्रकृतेः सप्तावरणसंज्ञकः ॥
तदूर्ध्वं सर्वसत्त्वानां कार्यकारणमानिनाम् ॥ ९४ ॥
निलयं परमं दिव्यं महावैष्णवसंज्ञकम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं नित्यस्वच्छमहोदयम् ॥ ९५ ॥
निरामयं निराधारं निरंबुधिसमाकुलम् ॥
भासमानं स्ववपुषा वयस्यैश्च विजृंभितम् ॥ ९६ ॥
मणिस्तंभसहस्रैस्तु निर्मितं भवनोत्तमम् ॥
वज्रवैदूर्य्यमाणिक्यैर्ग्रथितं रत्नदीपकम् ॥ ९७ ॥
हेमप्रासादमावृत्य तरवः कामजातयः ॥

अर्थ-तिसके ऊपर पचाश कोटि योजन क्रमसे दशगुण एकसे एक परे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, त्रिधाहंकार है, महामाया मूलप्रकृति पर्यंत सप्तावरण है,ब्रह्माण्डके प्रमाण इहैंतक है इसके ऊपर सब जीवोंके आदिकारण जहांसे कि सब कार्य होता है, वह परम दिव्य महा वैकुंठ लोक है जो शुद्धस्फटिकके तुल्य प्रकाश नित्य स्वच्छ महाकांतियुक्त मायासे रहित निराधार केवल शून्याकारमें विराजमान चारोंओर जल प्रवाहकरके युक्त अपने शरीरके तेजकरके प्रकाशमान ऐसा वैकुंठ है जिनमें हजारों मणिखचित खंभसे निर्मित उत्तम भवन हैं जिनकी अलौकिक शोभा है जहां वज्रमणि वैदूर्य्य (मूंगा) हीरालाल करके रचित दीपक है स्वर्णके चारोंतरफ कोट है और बड़े २ महलकरके शोभित है जहां चारोंओर कल्प वृक्ष शोभित है।

रत्नकुण्डैरसंख्यातपुरुषैर्मलयवासिभिः ॥ ९८ ॥
स्त्रीरत्नैः परमाह्लादैः संगीतध्वनिमोदितैः ॥
स्तुतं च सेवितं रम्यं रत्नतोरणमण्डितम् ॥ ९९ ॥
कारुण्यरूपं तन्नीरं गंगा यस्माद्विनिःसृता ॥

अनन्तयोजनोच्छ्रायमनन्तयोजनायतम् ॥ १०० ॥
यत्र शेते महाविष्णुर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १०१ ॥
यन्निमेषाज्जगत्सर्वं लयीभूतं व्यवस्थितम् ॥
इन्द्रकोटिसहस्राणां ब्रह्मणां च सहस्रशः ॥ १०२ ॥
उद्भवंति विनश्यंति कालज्ञानविडंबनैः ॥
यदंशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १०३ ॥
कार्य्यकारणसंपन्ना गुणत्रयविभावकाः ॥
यत्र आवर्तते विश्वं यत्रैव च प्रलीयते ॥ ॥ १०४ ॥
तद्वेदापरमं धाम मदीयं पूर्वसूचितम् ॥
एतद्गुह्यं समाख्यातं ददा तु वाञ्छितं हि नः ॥ १०५ ॥

अर्थ–असंख्य रत्नकुण्ड हैं पुरुष सब जहां मलयसुगन्धकरके युक्तहैं जहां हजारों स्त्रीरत्नकरके परमानन्द होरहाहै सबके गीतध्वनिसे चारों ओर परिपूरित आनंद उमडरहा है स्तुति और सेवासे युक्त अतिसुन्दर तोरणकरके शोभित होरहाहै जिन सबके करुणा करके जल प्रवाहसे जिससे कि गंगाजी निकसी हैं। वह गंगाजी अनन्त योजन ऊंची अनंत योजन चौडी हैं, जहां संपूर्ण संसारके ईश्वर महाविष्णु भगवान् सोते हैं, जिनको हजारों शिर हैं, हजारों नेत्र हैं, हजारों चरण हैं, सब संसार जिनकी आत्मा है, जिनके निमेषमात्रसे संपूर्ण संसार नाश होवेहैं और उत्पन्न होतेहैं, हजारों इन्द्र हजारों ब्रह्मा उत्पन्न होतेहैं, नाश होतेहैं, कालज्ञान पाकर जिनके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सब होतेहैं। कार्य कारणकरके युक्त तीनों गुणोंके विभाग करनेवालेहैं, जहांसे संसार होतेहैं और जहांपर फिर लय होजातेहैं। हे वेद! वही परमधाम मैंने पूर्व सूचित किया है यह गुप्त भेदका प्रसिद्धकरना मनवांछित फलको देवेहै इससे कहा है॥

तदूर्ध्वं तु परं दिव्यं सत्यमन्यद्व्यवस्थितम् ॥
न्यासिनां योगिनां स्थानं भगवद्भावनात्मनाम् ॥ १०६ ॥
महाशंभुर्मोदतेऽत्र सर्वशक्तिसमन्वितः ॥
तदूर्ध्वं तु परं कांतं महावैकुंठसंज्ञकम् ॥ १०७ ॥

वासुदेवादयस्तत्र विहरंति स्वमायया ॥
राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णुस्वरूपवान् ॥ १०८ ॥
वासुदेवो घनीभूतस्तनुतेजो महाशिवः ॥
तदूर्ध्वं तु स्वयं भातो गोलोकः प्रकृतेः परः ॥ १०९ ॥
वामनो गोचरातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ॥

अर्थ-तिसके ऊपर परमदिव्य ज्योतिरूप निराधार सत्यलोक स्थित है जहां सन्यासियोंके योगियोंके हरि भक्तोंके स्थान हैं इहां महाशिव सर्वशक्तियोंसे युक्त आनन्द करतेहैं तिसके उपर परमदिव्य कांतियुक्त महावैकुण्ठ लोकहै तहां वासुदेवादि चतुर्व्यूह अपनी माया करके विहार करते हैं पूर्वोक्त महाविष्णुजी रामजीके दिव्य गुण हैं वासुदेव भगवान् रामजी घनी ऐश्वर्य हैं और शरीरके तेज महाशिव हैं। तिसके ऊपर ५०० कोटि योजन मायासे परे गोलोक धाम है जो कि स्वयं प्रकाश मान है और वचनसे मनसे इंद्रियोंसे परे है ज्योतिरूप सनातन है ॥

तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम् ॥
योषिद्रत्नमणिस्तंभप्रमदागणसेवितम् ॥ ११० ॥
तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥
तस्याऽधः परमं दिव्यं रत्नमण्डपमुत्तमम् ॥ १११ ॥
तन्मध्ये वेदिका रम्या स्वर्णरत्नविनिर्मिता ॥
तन्मध्ये च परं शुभ्रं रत्नसिंहासनं शुभम् ॥ ११२ ॥
सहस्रारं महापद्मं कर्णिकारैस्समुत्तमम् ॥
तन्मध्ये मुद्रिकाभिन्नं मुद्राद्वाभ्यां विभिन्नकम् ॥ ११३ ॥
वह्नीन्दुमण्डलेनापि वेष्टितं बिंदुभूषितम् ॥
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं छत्रकं च सचामरम् ॥ ११४ ॥
सदाऽमृतघनस्रावि मुक्तादामवितानकम् ॥

अर्थ-उस गोलोकके मध्यमें परमदिव्य साकेतपुरी है जो कि मणियोंसे रचित है और स्त्रीरत्नोंसे सेवित है, उसके बीचमें परम उदार (श्रेष्ठ) वरका देनेवाला कल्पवृक्ष है उस कल्पवृक्षके नीचे परम दिव्यरत्नोंसे बनी हुई उत्तम मण्डप है, उस मण्डपके बीचमें स्वर्ण रत्नोंसे रचित अति सुन्दर एक वेदिका है, उस वेदिकाके बीचमें अत्यन्त उज्ज्वल मंगलदायक रत्नसिंहासन है;उस पर हजारदलवाला

महाकमल है, वह उत्तम कर्णिका करके युक्त है उसके वीचमें एक मुद्रिका भिन्न है गोलाकार उसके नीचे भागमें दो मुद्रा भिन्न हैं, वह अग्निमण्डल और चन्द्रमण्डल करके वेष्ठित है और विंदुकरके विभूषित है। कोटि चन्द्रमाके समान छत्र और चामर शोभित ह जिससे अमृत समान मेघ वर्षतेहैं और मुक्ताके झालरसे युक्त वितान (चांदनी) लगी है जिनकी शोभा अपार है।

तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिनमस्कृता ॥
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः ॥ ११५ ॥
तत्रादौ चिंतयेत्तेजो वह्निरूपं सशक्तिकम् ॥
तेजसा महता श्लिष्टमानन्दैकाग्रमंदिरम् ॥ ११६ ॥
एकाग्रमनसा पश्येत्तत्र देवं सुविग्रहम् ॥
स्निग्धमिन्दीवरश्यामं कोटीन्दुललितद्युतिम् ॥ ११७ ॥
चिद्रूपं परमोदारं वीरभद्रं रघूद्वहम् ॥
द्विभुजं मधुरं शांतं जानकीप्रेमविह्वलम् ॥ ११८ ॥
दोर्दण्डचण्डकोदण्डं शरच्चन्द्रमहाभुजम् ॥
सीतालिंगितवामांगं कामरूपं रसोत्सुकम् ॥ ११९ ॥
तरुणारुणसंकाशं विकचांबुजपादकम् ॥
पदद्वंद्वं नखश्चन्द्रः प्रियतेजस्समावृतम् ॥ १२०
कूर्मपृष्टपदाभासं रणन्मंजीरपादकम् ॥
कटिसूत्रांकितश्रीशं यज्ञसूत्रैरलंकृतम् ॥ १२१ ॥
रत्नकंकणकेयूरशोभिताग्रभुजद्वयम् ॥
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं कौस्तुभेन विराजितम् ॥ १२२ ॥

अर्थ-उस सिंहासनके वीचमें सर्वशक्तियों करके नमस्कृत श्रीजानकी देवी हैं, तहीं पर सर्व देवताओंके शिरोमणि भगवान् श्रीरामजी हैं। तहां प्रथममें अग्निरूप सुंदर शक्तिको तेज चितवनकरे महान् तेजसे युक्त आनंदरूप एकाग्र हो मंदिरको एकाग्र मनसे सुंदर स्वरूपको देखे कैसे हैं स्निग्ध (चिकन) कोमल श्याम कमलसे रूप, कोटि चन्द्रसे सुंदर प्रिय कांतियुक्त चिद्रूप परम उदार वीरभद्र रघुकुलशिरोमणि रामजी द्विभुज मधुरशांतस्वरूप हैं श्रीजानकीजीके प्रेममें विह्वल

हैं दोऊ भुजदंडमें प्रचण्ड धनुर्बाण हैं शरद्चंद्रसे महाभुज जिनके वायें अंगमें सीता शोभित हैं कामरूपरसको चाहनेवाले हैं लाल कमलसे कांतियुक्त दोनों चरण हैं दोनों चरणोंके नख चंद्रके प्रिय प्रकाशसे चारों ओर प्रकाशित होरहे हैं वह दोऊ चरण कूर्म पृष्ठपर कांतियुक्त मंजीरके शब्दसे पूरित शोभा देरहे हैं। कटिसूत्रसे शोभित और यज्ञोपवीत करके अलंकृत रत्नके कंगन हैं हाथमें और केयूर (बाजू) से दोनों भुजा शोभित हैं और कोटि चन्द्रमातुल्य प्रकाशमान कंठमें कौस्तुभमणि शोभित हैं।

दिव्यरत्नसमायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ॥
नासांशिकसमायुक्तं मुक्ताफलस्फुरन्मुखम् ॥ १२३ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चंद्रकोटिप्रमोदकम् ॥
विद्युत्कोटिचलच्छुभ्रं कुण्डलादिश्रुतिद्वयम् ॥ १२४ ॥
प्रवृत्तारुणसंकाशं किरीटेन विराजितम् ॥
गोविंदं गोविदां श्रेष्ठं चिन्मयानंदविग्रहम् ॥ १२५ ॥
दिव्यायुधसुसंपन्नं दिव्याभरणभूपितम् ॥
अक्षरं केवलं ब्रह्म पीतकौशेयवाससम् ॥ १२६ ॥
शंखचक्रगदापद्मचर्मासिहलमूशलैः ॥
तद्रूपविविधाकारैः सेव्यमानं परात्परम् ॥ १२७ ॥
वशिष्ठवामदेवादिमुनिभिः परिसेवितम् ॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं सुचामरम् ॥ १२८ ॥
उभौ भरतशत्रुघ्नौ तालवृंतकराम्बुजौ ॥
अग्रे व्यग्रं हनूमंतं वाचयंतं सुपुस्तकम् ॥ १२९ ॥

अर्थ-दिव्यरत्नकी मुद्रिका धारण कियेहैं और नासिकामें मुक्ताफल (नाशामणि) है, हास्ययुक्त मुख है, कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान, कोटिचन्द्रमाके समान आनंदरूप कोटि दामिनीके समान चंचल उज्वल दोनों कानमें कुण्डल हैं तप्त कांचनसे लाल शिरपर किरीट शोभित है सर्व इंद्रियोंमें व्याप्त गोविंद इंद्रियोंसे परे सच्चिदानंदके स्वरूप दिव्य आयुध करके युक्त दिव्य भूषणोंके धारण किये केवल अक्षर ब्रह्म पीताम्बर धारण किये और शंख, चक्र, गदा, पद्म, चर्म, (ढाल) असि (खड्ग), हल, मूसल धारण किये ऐसे बहुत प्रकारके स्वरूपमे सेवित हैं

भाव-हजारों विष्णु नारायणादि चतुर्भुज अष्टभुजवालेसे रामजी परात्पर ब्रह्म सेवित हैं और वसिष्ठ वामदेवादि मुनियों करके सेवित हैं पश्चिम भागमें लक्ष्मणजी छत्र चामर लिये खड़ेहैं और भरत शत्रुघ्न दोनों तालके पंखा हस्तकमलमें लिये दक्षिण वायीं ओरको और सामने रामजीके हनूमान्जी सुन्दर पुस्तक वांचतेहुए ऐसे चारों भाइयोंके ध्यान करे। हे शिष्य ! ये साकेतवासीके ध्यान वर्णन किया है।

प्रश्न-हे स्वामीजी ! श्रीजानकीजीके परत्व कुछ कहिये मेरेको सुनवेकी वहुत ही इच्छा है।

उत्तर-हे शिष्य ! श्रीजानकीजीके परत्व महारामायणें शंकरजीने पार्वतीजीसे ऐसा कहाहै यथा-प्रमाण-

संप्रवक्ष्यामि याश्शक्तीर्जानक्यंशास्त्रिंशिकाः ॥
निकटे संस्थिता नित्यं सर्वाभरणभूषिताः ॥ १३० ॥
श्रीर्भूर्लीला तथोत्कृष्टा क्रियायोगोन्नती तथा ॥
ज्ञाना पार्वी तथा सत्या कथिता चाप्यनुग्रहा ॥ १३१ ॥
ईशाना चैव कीर्तिश्च विद्येला क्रांतिलंबनी ॥
चन्द्रिकापि तथाक्रूरा कान्ता वै भीषणी तथा ॥ १३२ ॥
क्षांता च नन्दनी शोका शांता च विमला तथा ॥
शुभदा शोभना पुण्या कला चाप्यथ मालिनी ॥ १३३ ॥
महोदया ह्लादिनी शक्तय एकादशत्रिकाः ॥
भृकुटीं दर्शयंतीमा जानक्या नित्यमेव च ॥ १३४ ॥

अर्थ-शिवजी बोले कि श्रीजानकीजीके अंश जे ३३ शक्ति हैं उन्हें कहताहूं सुनो, जानकीजीके सामनेमें नित्य रहतीहैं। श्री १, भू देवी २, लीला देवी ३, तथा उत्कृष्टा ४, क्रिया ५, योगा ६, उन्नती ७, ज्ञाना ८, पार्वी ९, तथा सत्या १०, अनुग्रहा ११, ईशाना १२, कीर्ति १३, विद्या १४, इला, १५, क्रांति १६, लंबनी १७, चंद्रिका १८, तथा क्रूरा १९, कान्ता २०, भीषणी २१, क्षांता २२, नंदनी २३, शोका २४, शांता २५ और विमला २६, शुभदा २७, शोभना २८, पुण्या २९, कला ३०, और मालिनी ३१, महोदया ३२, आह्लादिनी ३३; यह तेतीश शक्ति श्रीजानकीजीकी भृकुटी देखती रहतीहैं और भृकुटीके देखानेसे सब कोई अपने २ कार्यको करतीहैं सो कहतेहैं ॥

श्रीश्च श्रीः प्रेरका ज्ञेया भूरण्डाधार उच्यते ॥
लीला बहुविधा लीला उत्कृष्टोत्कर्षप्रेरका ॥ १३५ ॥
क्रिया समक्रिया सम्यग्योगा योगान्विता गतिः ॥
उन्नती महती वृद्धिर्ज्ञाना विज्ञानप्रेरका ॥ १३६ ॥
करोति प्रेरणं सम्यक् पर्वी जयपराजयौ ॥
सत्यस्य प्रेरका सत्याऽनुग्रहार्था दयागुणाः ॥
ये च सर्वे जगन्मध्ये भेदा अपि सुदुस्तराः ॥ १३७ ॥
ईशाना प्रेरका तेषां वर्तते नात्र संशयः ॥
यशोऽधिकारिणी कीर्तिर्विद्या विद्याधिकारिणी ॥ १३८ ॥
सद्वाणी प्रेरकेला स्यात्कांता क्रांतिविवर्द्धिनी ॥
यानि धामानि सर्वाणि श्रीरामस्याद्भुतानि च ॥ १३९ ॥
गुणाश्चानंतरूपाणि प्रेरकैषां विलंबिनी ॥
शीतप्रकाशयोस्सम्यक् प्रेरका चंद्रिकापि च ॥ १४० ॥
क्रूरत्वं प्रेरका क्रूरा मनोवाक्कायकर्म्मभिः ॥
प्रेरका वर्त्तते कान्ता रागमोहौ शुभाशुभौ ॥ १४१ ॥
प्रेरका भीषणी तेषां ये च सर्वे भयादयः ॥
वर्त्तते प्रेरका क्षान्ता क्षमा गुणविशेषतः ॥ १४२ ॥
नंदनी च तथा शक्तिः सर्वानंदप्रकाशिनी ॥

अर्थ-संपूर्ण ब्रह्माण्डमें श्रीके प्रेरणा करनेवाली श्रीदेवी शक्ति है १। ब्रह्माण्डके आधार भूदेवी शक्ति है २। संपूर्ण लीलाकी प्रेरका लीला देवी है ३। सब उत्कर्षके प्रेरक उत्कृष्टा शक्ति है ४। सम्पूर्ण क्रियाकी प्रेरकक्रिया शक्ति है ५। अष्टांग योगादिकी प्रेरक योगाशक्ति है ६। सकल वृद्धिकी प्रेरक उन्नति शक्ति है ७। ज्ञान विज्ञान वैराग्यादिकी प्रेरक ज्ञाना शक्ति है ८। जय पराजयकी प्रेरक पर्वी शक्ति है ९। सत्यकी प्रेरक सत्या शक्ति है १०। दयादिक गुणकी प्रेरक अनुग्रहा शक्ति है ११। संपूर्ण दुस्तर भेदोंकी प्रेरक ईशाना शक्ति है १२। सुयशकी प्रेरक कीर्ति शक्ति है १३। सम्पूर्ण विद्याकी प्रेरक विद्या शक्ति है १४। सद्वाणीकी प्रेरक इला शक्ति है १५। सब कांतिकी प्रेरक कांता शक्ति है १६। और तीन लोक चौदहों भुवन और १०८ वैकुण्ठ हैं सो सब श्रीरामजीके धाम हैं और भगवान्‌के असंख्यगुण जो हैं और

जितने रूप धारण करते हैं अंश कला विभूति आवेशादि सो सब विलंविनी शक्ति करके १७। शीत प्रकाशकी प्रेरक चंद्रिका शक्ति है १८। क्रूरा है अक्रूर परन्तु संपूर्ण क्रूरताको प्रेरक है सो क्रूरा शक्ति है १९ । सब राग मोह शुभाशुभकी प्रेरक कान्ता शक्ति है २० । सकल भयकी प्रेरक भीषणी शक्ति है २१ । क्षमागुणकी प्रेरक क्षमा शक्ति है २२। आनन्दकी प्रेरक नन्दिनी शक्ति है २३ ॥

शोका स्वयं विशोका च लोकानां शोकप्रेरका ॥
शांतिप्रदायिनी शांता विमला विमलान् गुणान् ॥ १४३ ॥
शुभदा सद्गुणं शोभां प्रेरयंती च शोभना ॥
पुण्या पुण्यगुणोपेता कला बहुकलावती ॥ १४४ ॥
मालिनी व्यापकान्सर्वान्प्रेरयंती महोदयान् ॥
विभवं प्रकृतिर्भक्तिर्भक्ति वर्द्धयते सदा ॥ १४५ ॥
आह्लादिनी महाऽऽह्लादं संवर्द्धयति सर्वदा ॥
स्वे स्वे कार्य्ये रतास्सर्वाश्शक्तयश्चैव तास्सदा ॥१४६॥
यस्मिन्काले भवेदाज्ञा सीतारामानुशासनम् ॥
तस्मिन्काले प्रकुर्वीत सर्वं कार्य्यमशेषतः ॥ १४७ ॥
एकैकानां सहस्राणि वर्त्तंते चोपशक्तयः ॥
व्यापकास्सर्वलोकेषु सर्वतो गगनं यथा ॥ १४८ ॥
जानक्यंशादिसंभूताऽनेकब्रह्माण्डकारिणी ॥
सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी ॥ १४९ ॥

अर्थ-शोका शक्ति है अशोक परन्तु संपूर्ण ब्रह्माण्ड भरेमें शोक प्रेरणा करती है २४। शांतिकी प्रेरक शांता शक्ति है २५। विमलगुणकी प्रेरक विमला शक्ति है २६। सद्गुणकी प्रेरक शुभदा शक्ति है २७ । सुन्दरताकी प्रेरक शोभना शक्ति है २८। पुण्यकी प्रेरक पुण्या शक्ति है २९ । सकलगुण और ६४ कलाकी प्रेरक कलावती शक्ति है ३०। सर्वत्र व्यापकताकी प्रेरक मालिनी शक्ति है ३१। और संपूर्ण विभव प्रकृति गुणके और भक्तिकी प्रेरक भक्ति शक्ति है ॥ ३२ ॥ परम आह्लाद जो ब्रह्मानन्द है तेहिका प्रेरक अह्लादिनी शक्ति है ३३। ये सब शक्ति अपने २ कार्यमें रत रहती हैं जिस कालमें श्रीसीतारामजीकी आज्ञा होतीहै उसी कालमें सर्व शक्ति सर्व कार्यको विशेष पूर्वक

करती हैं इन सब शक्तियोंको हजारों २ उपशक्ति याने आज्ञा करनेवाली दासी हैं सो सब लोकमें व्याप्त होरही हैं। आकाशके समान और जानकीजीके अंशसे जो उत्पन्न हुई हैं कोटि २ ब्रह्माण्डको रचनेवाली वही मूल प्रकृति महामायाके स्वरूप जानना। हे शिष्य ! ऐसा श्रीजानकीजीका परत्व कहा है इससे श्रीजानकीजीके समान दूसरेको कहना मूर्खता है ।

प्रश्न–हे स्वामीजी ! वाल्मीकिजीने रामायणमें कौन लोक लिखा है? सो कहिये ॥

उत्तर–हे शिष्य ! महर्षिजीने सांतानिकलोक रामायणमें लिखा है यथा–

> तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ॥
> लोकान्सांतानिकान्नाम यास्यंती मे समागताः ॥१५०॥
> यच्च तिर्यग्गतं किंचित्त्वामेवमनुचिंतयन् ॥
> प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या वै तत्संताने निवत्स्यति ॥१५१॥
> सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनंतरे ॥

अर्थ–विष्णु भगवानके वचन सुनकर लोकपिता ब्रह्माजी बोले कि यह सब आपके भक्त सांतानिक नाम वाले लोकोंमें जांयगे । ये तो आपके साथही आये हैं परन्तु जो कोई कीट पतंग भी आपका नाम लेकर शरीर त्यागन करेंगे वे सब सान्तानिक लोकोंमें जांयगे । यह सान्तानिक लोक ब्रह्म गुणसे युक्त ब्रह्मलोकसे मिलाहुआ है यह ब्रह्मलोक साकेतही है । ऐसा ही महाभारतमें कहा है। यथा प्रमाण–

> लोकान्सान्तानिकान्नाम भविष्यंत्यस्य भारत ॥
> यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैव शोच्यः परंतप ॥ १५२ ॥

अर्थ–जिस समयमें विदुरजीका देहांत हो गयाहै तब युधिष्ठिरजी दग्धकरनेके लिए चले हैं उस समयमें आकाशवाणी हुईहै कि हे भारत ! इनको तो योगियों-के दुर्लभ सर्वोपरि सांतानिकलोक होगा काहेसे कि सन्यास धर्म प्राप्त रहा इससे दग्ध मत करो यतिको दग्ध करना दोष है और तुम शोच भी नहीं करो । ऐसाहै इससे सान्तानिक सर्वोपरि है ऐसा प्रधान वेदके तुल्य दोनों ग्रंथ रामायण और महाभारतमें लिखा है । इससे परे लोक कोई भी नहीं है ॥

प्रश्न–हे स्वामीजी ! साकेत लोक और सांतानिक लोक एक है कि दो हैं सो कहिये ? मेरेको बहुत ही संदेह है ।

उत्तर-हे शिष्य ! जहां सांतानिक लताके वन हों उसको सांतानिक लोक कहतेहैं, सो सांतानिक वन साकेत लोकहीमें हैं । ऐसा सदाशिवसंहितामें कहाहै । यथा-

साकेतदक्षिणद्वारे हनुमान् रामवत्सलः ॥
यत्र सांतानिकन्नाम वनं दिव्यं हरेः प्रियम् ॥ १५३ ॥

अर्थ-साकेतपुरीके दक्षिणद्वारमें भक्तवत्सल श्रीहनुमानजी रहतेहैं जहां भगवानको प्रिय अति दिव्य सांतानिक वन है ऐसा कहा है, फिर उसी सांतानिक वनको गोस्वामीजीने शीतल अमराई कहा है यथा-हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई ॥ गये जहां सीतल अँवराई ॥ ये वचन शिवजीने (प्रजासहित रघुवंश मनि, किमि गवने निज धाम) इसके उत्तरमें कहे हैं, इससे दूसरा अर्थ करना विरुद्ध है इहां निश्चय सांतानिक वनका अर्थ है, इससे साकेत लोक ही गोस्वामीजीका सिद्धांत है, एही सिद्धान्त श्रीप्रहलादजीके अवतार कबीरजीका सिद्धान्त है । यथा-"छोडि नासूत मलूक जव रूज लाहूत हाहूत बाजी ॥ और साहूत राहूत इहां डारि दे कूदि आहूत जाहूत जाजी ॥ जाय जाहूतमें खुद खाविन्द जहँ वही मकान साकेत साजी ॥ कहै कब्बीर हां भिस्त दोजख थके वेद किताव कातूत काजी ॥ ऐसा अर्वोमें नौ मोकामके ऊपर साकेत कहा है फिर कबीरजीने झूलना छंद पिंगलमें विस्तारसे नौ मोकामके ऊपर सत्यलोक कहा है कि (भये आनन्दसे फन्द सब छोड़िया पहुँचिया जहां सतलोक मेरा) ऐसा कहाहै इससे सबके सिद्धान्त एकही हैं ।

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! सत्यलोक साकेत हीका नाम है कि दूसरा सत्यलोकहै॥

(उत्तर) हे शिष्य ! सत्यलोक ब्रह्मलोकको भी कहतेहैं, परन्तु सिद्धान्तग्रन्थमें साकेतहीके नाम जानना चाहिये, काहेसे कि शिवसंहिता पंचमपटलके २० अध्यायमें कहा है । यथा-

अयोध्या नंदनी सत्यनामा साकेत इत्यपि ॥
कोशला राजधानी च ब्रह्मपूराऽपराजिता ॥ १५४ ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसंपदाम् ॥
दृष्ट्वैवं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा ॥ १५५ ॥

अर्थ-अयोध्या, नन्दनी, सत्या, साकेत, कोशला, ब्रह्मपुर, अपराजिता इतने नाम अयोध्याजीके हैं । आठ चक्र नौ द्वारवाली नगरी धर्मसम्पत्ति करके युक्त है ऐसा ज्ञाननेत्रसे देखकर ध्यान करना तैसेहीं दिव्य श्रीसरयूजीहैं ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! श्रीअयोध्याजीके और श्रीसरयूजीके माहात्म्य भारी हैं कुछ और भी कहिये ।

(उत्तर) हे शिष्य ! अयोध्या सरयूकी प्रशंसा क्या करें ग्रन्थ विस्तार हो जायगा इस भयसे नहीं कहते हैं, जो कुछ है सो अयोध्याही है।

रासस्थानमयोध्यैव धर्मस्थानं सनातनम् ॥
मुक्तिस्थानमयोध्यैव भक्तिस्थानं च शाश्वतम् ॥ १५६ ॥
धर्मस्थानमयोध्याऽख्यं रंगमुक्तिपदं स्मृतम् ॥
द्वारिकाभक्तिकृत्स्थानं रसस्थानं तु माथुरम् ॥ १५७ ॥
सर्वमेतदयोध्यैव सूक्ष्मदृष्टिसमर्पणे ॥
तत्राशोकवनं रम्यं रसस्थानं हि केवलम् ॥ १५८ ॥
तन्मध्ये जानकीरामौ नित्यं लीलारतौ स्थितौ ॥
सहितौ वनितायूथैः शतैरपि मनोहरैः ॥ १५९ ॥

अर्थ-शिवसंहिताके २० अध्यायमें शिव वचन है कि रासस्थान अयोध्या ही है, धर्मस्थान सनातन है, मुक्तिस्थान अयोध्या ही है भक्तिस्थान सर्वदा अयोध्याही है, धर्मस्थान अयोध्या हीहै, रंगनाथजी मुक्तिके देनेवाले कहे हैं द्वारकापुरी भक्ति कृत्य स्थान है और मथुराजी रासस्थान है, यह सब अयोध्याहीसे हैं, यदि ज्ञानदृष्टि देकर देखें तो अज्ञानसे नहीं जहां अतिरम्य अशोक वन है केवलरसस्थान है उसके बीचमें श्रीसीतारामजी दोनों नित्य लीला प्रीतिकरके स्थित हैं, हजारों स्त्री यूथकरके दोनों विराजमान हैं, ऐसा कहा है, हे शिष्य ! अयोध्याजीके और सरयूजीके माहात्म्य वशिष्ठसंहितामें विस्तारसे वर्णन किये हैं तहां अन्तमें दो श्लोक ऐसे कहे हैं। यथा वशिष्ठ उवाच भरद्वाजं प्रति ८७ अध्याय-

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानंदरूपिणी ॥
यस्यांशांशेन वैकुंठा गोलोकादिप्रतिष्ठिताः ॥ १६० ॥
यत्र श्रीसरयू नित्या प्रेमवारिप्रवाहिनी ॥
यस्यांशांशेन संभूता विरजादिसरिद्वराः ॥ १६१ ॥
पूर्णः पूर्णतमः श्रीमान्सच्चिदानंदविग्रहः
अयोध्यां क्वापि संत्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति ॥ १६२ ॥

अर्थ-अयोध्या नगरी नित्य है सच्चिदानन्दका स्वरूप है जिनके अंशांशकरके सर्व वैकुण्ठ गोलोकादि प्रतिष्ठित हैं ॥ जहां श्रीसरयूजी नित्य प्रेमरूपा जलकरके पूर्ण वहती हैं जिनके अंशांशकरके विरजादि नदियां हैं। पूर्ण पूर्णतम श्रीमान् सच्चिदानन्दके स्वरूप श्रीरामजी श्रीअयोध्याजीको छोडकर कभी नहीं जातेहैं।

याऽयोध्यापुरी सा सर्ववैकुंठानामेव मूलाधरा मूलप्रकृतेः परा,तत्सद्ब्रह्ममया विरजोत्तरा, दिव्यरत्नकोशाढ्यायां तस्यां नित्यमेवं सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीत्यथर्वणे श्रुतिः ॥ देवानां पुरर्य्ययोध्या तस्यां हिरण्मयः कोपः स्वर्गलोको ज्योतिपावृता यो वै तां ब्रह्मणे वेदामृतेन वृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुःकीर्तिप्रजां ददुरितिसामवेदे तैत्तिरीयश्रुतिः ॥

ऐसे ही हनुमत्संहितामें तथा अगस्त्यसंहितादिमें अयोध्या सरयूके माहात्म्य बहुत हैं कोटि २ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नारायण, महाशंभु, महाविष्णु, कोटि २ कृष्णादिक चौवीशों अवतार अयोध्याजीके रजमें तथा सरयूजीके बालुकामें लोटते हैं और हाथ जोडे खडे हैं। हे शिष्य ! कहांतक प्रमाण दें जो कोई विष्णु नारायणके तथा कृष्णजीके उपासक हैं उनको भला यह सिद्धांत क्यों कर भावेगा कृष्णउपासक केवल गर्गसंहिताके भरोसे वाद विवाद करतेहैं और यह नहीं जानतेहैं कि एक संहिता को कहे सैकडों संहिता रामजीको प्रतिपादन करती हैं विशेष देखना होतो आदिपुराण देखो जहां स्वयं कृष्णजीने अर्जुनको क्या सिद्धान्त कहा है नहीं तो वेदार्थप्रकाश रामायण देखो और महारामायणमें परम दयालु अनन्य रामोपासक श्रीशंकरजीने रामजीके ४२ चरण चिह्नोंसे सब अवतार वर्णन किये हैं फिर कालतन्त्रमें काल और मायाके संवादमें सर्व सिद्धान्त विषयमें ऐसा कहा है कि क्या कहें ग्रन्थ विस्तार होनेका भय है नहीं तो कुछ कहते फिर रुद्रयामल ब्रह्मयामल देखो जहां शिवजीने रकारही मकारसे सब वर्णन किया है फिर पुलस्त्य-संहिता देखो जहां रामनामहीसे सब कुछ वर्णन किया है विशेष क्या कहें "यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ"

प्रश्न-हे स्वामीजी ! आपने प्रह्लादजीके अवतार कबीरजीको कहा सो कहां लिखा है।

उत्तर-हे शिष्य ! यह कथा अगस्त्यसंहिता भविष्यखण्डके १३१ अध्यायसे १३९ अध्याय तक वर्णन है। तहां स्वयंभू, नारद, शंभु, कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, सुकदेव, यमराज यह द्वादश वैष्णवोंके सहित और लक्ष्मीजीके सहित रामजी अवतार धारण किये हैं तिनमें प्रथम श्रीरामजी प्रयाग-राजमें पुण्य सदन कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घर सुशीला नाम स्त्रीमें जन्म धारण किया और श्रीरामानंदस्वामी करके विख्यात हुये तिनके प्रथम शिष्य ब्रह्माजीके अवतार अनन्तानंदजी दूसरे शिष्य नारदजीके अवतार सुरेसुरानंदजी हुये तीसरे

शिष्य शंकरजीके अवतार सुखानंदजी हुये चौथे शिष्य सनत्कुमारके अवतार नरहरि या नंदजी हुये। पांचवें शिष्य कपिलजीके अवतार योगानंदजी हुये। छठे शिष्य मनुजीके अवतार पीपाजी राजा हुये ७ वें शिष्य प्रहलादजीके अवतार कबीरजी हुये ८ वें शिष्य जनकजीके अवतार भावानंदजी हुये ९ वें शिष्य भीष्मजीके अवतार सेना भक्त हुये १० वें शिष्य बलिजीके अवतार धनाभक्त हुये ११ वें शिष्य शुकदेवजीके अवतार गालवानंद योगिराज हुए। १२ वें शिष्य यमराजजीके अवतार रमादास याने रैदासभक्त हुए १३ वें चेली लक्ष्मीजीके अंशसे पद्मावतीजी हुई। यह सब ४४ सौ वर्षकलियुग बीतेपर हुये हैं, और जो जहां जिसकुलमें जिसदिन मास पक्ष तिथि नक्षत्रादिमें जन्म लियेहैं सो विस्तारसे अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीसे कहाहै। हे शिष्य! ये सब राममंत्र षडक्षरके आचार्य हुये हैं और सर्वत्र विजय करके राममंत्रका प्रचार कियेहैं। जिन संप्रदायमें तुलसीदासजी अद्वितीय महात्मा हुयेहैं और भी चारो धाममें साधुसमाज प्रसिद्ध हैं विशेष क्या कहें।

प्रश्न–हे स्वामीजी! वाल्मीकीय रामायणमें सर्वोपरि गोलोक धामके नाम हैं कि नहीं? सो कहिये।

उत्तर–हे शिष्य! वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्डके ३० सर्गमें रामजीका वचन जानकीजीसे है। यथा–

देवगंधर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्॥
प्राप्नुवंति महात्मानो मातापितृपरायणाः॥ १६३॥

अर्थ–मातापिताकी सेवाकरनेवाले महात्माओंको गंधर्वलोक देवलोक ब्रह्मलोक तथा गोलोकपर्यंत प्राप्त होजाताहै। ऐसा कहा है इससे गोलोकके भी नाम महर्षिजीने कहे हैं।

प्रश्न–हे स्वामीजी! कृष्णोपासक लोग गोलोकमें स्वयं कृष्णजीको वर्णन करतेहैं सोई आपने भी कृष्णोपासनासिद्धांतमें कहाहै और फिर आपके मुखसे सुना कि गोलोकमें सर्वोपर साकेतलोक है सो यह कैसा कृपाकरके कहिये।

उत्तर–हे शिष्य! इसमें यह भेद है कि गोलोकके मध्यमें साकेतपुरी है और साकेतके पश्चिमद्वार वृन्दावन है उत्तरद्वार जनकपुर है, पूर्वद्वार आनंदवन है, दक्षिण द्वार चित्रकूट ऐसा विस्तारसे सदाशिव संहितामें वर्णन है, और सर्वोपरि शुकसंहितामें विस्तारसे वर्णन है। वही तुमको सुनातेहैं काहेसे कि और संहिताके प्रमाण देनेसे अन्य उपासक लोग पक्षपात समझेंगे इससे शुकदेवसंहिता हीसे कहना ठीक है जो कि स्वयं गोलोकहीमें राजा परीक्षितजीसे शुकाचार्यजीने वर्णन किया है सो प्रथमाध्यायके द्वितीय पादमें राजा जनकजीके वचन हैं। यथा–

कथं ब्रह्मविदां मध्ये संवादोऽयमजायत ॥
कथं वा विष्णुराताय त्वया पूर्वं प्रबोधितम् ॥ १६४ ॥
गोलोकाख्यं च किं स्थानं यत्र संप्रति तिष्ठम् ॥
एतन्मे भगवन्ब्रूहि शुक कारुणिकोत्तम ॥ १६५ ॥

अर्थ-जनकजी बोले कि ब्रह्मवादियोंके मध्यमें यह वाद कैसे भया और विष्णुरात (परीक्षित) जीके लिये आपने कैसे पूर्वमें बोध किया और गोलोकधाम करके परमस्थान क्या है ? जहां परीक्षित जी हैं यह सब मेरेको हे भगवन् ! करुणास्थान शुकदेवजी ! कहिये यह वचन बहुलाश्व राजाके सुनकर शुकाचार्य स्वामीजी बोले ॥

पुराहं ब्रह्मणो लोके उपित्वा शाश्वतीः समाः ॥
ब्रह्मवादे जायमाने सिद्धांते ब्रह्मवादिनाम् ॥ १६६ ॥
रामः सर्वं हरिः सर्वमित्यश्रौपं मुहुर्मुहुः ॥
ततः श्वेतद्वीपपतेरनिरुद्धस्य संसदि ॥ १६७ ॥
ब्रह्मप्रसंगवार्तासु राम एव विधिः श्रुतः ॥
राम एव सदा ध्येयो ज्ञेयः सेव्यश्च साधुभिः ॥ १६८ ॥
इत्यश्रौपमहं राजन् सिद्धांतेषु मुहुर्मुहुः ॥
ततोऽनंतस्य शेषस्य साक्षान्नारायणात्मनः ॥ १६९ ॥
सदा सुसंगतोऽश्रौपं राममेव कथाविधिम् ॥
नातः परतरं वेद्यं रामत्रैलोक्यनायकात् ॥ १७० ॥
एक एव परं ब्रह्म रामो वेदेषु गीयते ॥
इति श्रुत्वा विनिश्चित्य श्रीरामचरितं मया ॥ १७१ ॥
निर्मथ्य सर्वशास्त्रेषु संचितं पठितं स्मृतम् ॥
स्थापितं हृदये नित्यं सर्वस्वं प्राणजीवनम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-शुकाचार्यजी बोले कि पूर्वकाल में ब्रह्मलोकमें ब्रह्मवादियोंके मध्यमें ब्रह्मवाद विषय सर्वदा यही सुना कि श्रीराम ही सर्वके दुःख हर्ता हरि भगवान् हैं ऐसा सबके मुखसे बार बार सुना फिर तिसके पीछे श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्धके पासमें ब्रह्मप्रसंगकी वार्तामें सुना कि राम ही परब्रह्म सबके ध्यान करने योग्य हैं और साधुओं करके राम ही सेव्य हैं । हे राजन् ! ऐसा सिद्धान्त मैंने

चार वार सुना है फिर तिसके वाद साक्षात् नारायण भगवान्के आत्मा शेपजीके मुखसे सत्संगद्वारा रामहीकी कथा विधि सुना, कि राम परब्रह्म सबसे परे हैं रामजीसे परे कुछ नहीं है, एक परब्रह्म रामहीहैं ऐसा वेदमें कहा है ऐसा मैंने निश्चय पूर्वक राम चरित्र सुनकर और स्वयं सर्व शास्त्रमें मथकर एकत्र किया और पढ सुनकर नित्य हृदयमें स्थापित किया है । सर्वस्व प्राण जीवन राम ही हैं ।

कदाचिद्गोलोकमध्ये जातोऽहं स्वेच्छया नृप ॥
जाता गावः कामदुघाः शाखिनः कल्पशाखिनः ॥ १७३ ॥
यत्र वृन्दावनं नाम साक्षात्कृष्णवनं महत् ॥
यत्र गोवर्द्धनगिरिर्मणिधातुविचित्रितः ॥ १७४ ॥
यत्र कल्लोककलिता कालिन्दी सरितां वरा ॥
तस्यास्तीरेषु पुष्पाढ्यं कदंबद्रुमकानने ॥ १७५ ॥
यत्र रासरसाऽवेशमत्ताः श्रीगोकुलांगनाः ॥
यत्र क्रीडति कैशोरवेपः श्रीकृष्णचंद्रमाः ॥ १७६ ॥
मुरलीवादनपरो रूपमाधुर्य्यवारिधिः ॥
लीलाधिदेवता तस्य यत्र श्रीवृषभानुजा ॥ १७७ ॥
सुंदरी राधिका नाम रतिकोटिविचत्वरा ॥
यत्र लीलारसांभोधौ ब्रह्मानंदसुधाकणः ॥ १७८ ॥
न ज्ञायते कविकल्पैर्भक्तिसारैकवेदिभिः ॥
गोपेन्द्रो यत्र नंदाख्यस्तस्य घोषाः सभादयः ॥ १७९ ॥
दिवानिशं प्रवर्द्धिष्णुर्महामंगलमंडितः ॥
कृष्णवात्सल्यरसभूर्यशोदा यस्य गेहिनी ॥ १८० ॥ ॥
महाभाग्या महोदारा यत्र गोपा मुदान्विताः ॥
न यत्र म्रियते कश्चित्कालमायातिगेऽद्भुते ॥ १८१ ॥

अर्थ-शुकाचार्यजी वोले कि हे नृप ! कभी गोलोकके मध्यमें अपनी इच्छासे मैं गया तो देखा कि जहां हजारों कामधेनु गौ जहां तहां घूम रहीहैं सवही वृक्ष कल्प वृक्षके समान हैं । जहां साक्षात्कृष्णचन्द्रके महान् वन वृन्दावन शोभित हैं जहां गोवर्धन पर्वत मणि धातुओं करके विचित्रित है जहां नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीयमुनाजी सुन्दर कल्लोल कररही हैं उसके तीरमें पुष्पोंसे युक्त सुन्दर कदम्ब वन हैं ।

जहां रासके रसमें उन्मत हजारों व्रजस्त्रीगण हैं जहां किशोर श्रीकृष्णचन्द्रम क्रीडा करतेहैं । मुरली वजानेमें तत्पर रूप माधुर्य्यताके सागर हैं, जहां लीलाकी स्वामिनी श्री वृषभानुकी पुत्री अतिसुंन्दरी कोटि रतिको चकित करनेवाली श्रीराधिका नामवाली हैं । जहां लीलारसके सागरमेंसे ब्रह्मानन्दसुख सुधाकण हैं इसको बडे २ कवि ज्ञानी लोग नहीं जान सकते हैं केवल एक भक्तिसारहीसे जानतेहैं भक्ति विना जानना कठिन है जहां सब गोपोंमें श्रेष्ठ श्रीनंद हैं तिनके सभामण्डलीं करके शब्द होरहा है । दिनरात्रि महा मंगल शोभासे वृद्धि होरही है और श्रीकृष्णजीके वात्सल्यरसमें नन्दजीकी स्त्री श्रीयशोदाजी मग्न हैं महाभाग्यवाले परम उदार जहां गोपलोग आनन्द करके युक्त हैं जहां कोई नहीं मरतेहैं काल और मायासे रहित हैं किसीका गम नहीं है वडा अद्भुत है ॥

अलौकिको यत्र रविर्बोधयत्यंबुजाकरम् ॥
तथा विलक्षणश्चन्द्रो भुंक्ते कैरविणीर्निशि ॥ १८२ ॥
नित्योत्साहो नित्यसुखं नित्यकेलिरसोदयः ॥
नित्यनव्यतरं रूपं नवीनं यत्र मंगलम् ॥ १८३ ॥
तत्र गत्वा समाश्रित्य दिव्यश्रीयमुनाजले ॥
वंशीवटतरोर्मूले नटंतं श्यामसुन्दरम् ॥ १८४ ॥
ददर्श गोपिकावृन्दैः सह रंजितकाननम् ॥
तत्र ब्रह्मादयो देवाः कोटिजन्मार्जितैः शुभैः ॥ १८५ ॥
गोपिकाभावमासाद्य रमणं रमयंति ह ॥
ऋषयः श्रुतयश्चैव गोपिकाभावभाविताः ॥ १८६ ॥
क्रीडंति प्रभुणा साकं महासौभाग्यमंडिताः ॥
तत्र गत्वा रसावेशादुच्चैर्गानकलस्वरैः ॥ १८७ ॥
अतीव रंजयामास गोपीमाधवयोर्मनः ॥
दृष्टो मया च तत्रैव पाण्डवेयो महामनाः ॥ १८८ ॥
परीक्षिन्नाम नृपतिः श्रुत्वा भागवतं पुरा ॥
श्रीभागवतवक्तारं ववंदे मां पुरातनम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-जहां अलौकिक सूर्य कमलोंको प्रफुल्लित कररहेहैं तैसेही विलक्षण चन्द्रमा भी कुमुदिनींके रस लेरहे हैं । जहां नित्य उत्साह नित्य सुख नित्य रसक्रीडादि

उदय होतेहैं नित्य नवीन रूप नित्य नवीन मंगल हैं। तहां जाकरके दिव्य श्रीयमुनाजीके जलमें स्नानादि कर वंशीवटवृक्षके मूलमें नृत्य करते हुये श्यामसुन्दरको और गोपियोंके समूह चारों ओर वनको प्रकाश करतेहुए सबको देखा तहां ब्रह्मादिक देवता सब कोटि जन्मोंके संचित पुण्य करके गोपिकाभावमें प्राप्त होकर सुन्दर विहार कररहे हैं और दण्डकवनवासी ऋषिलाग, श्रुति सब गोपिकाभावमें भावित होरहे हैं सब मिलकर प्रभुके साथ महासौभाग्य करके शोभित क्रीडाकरतेहैं तहां जाकर रससे परिपूर्ण हो खूब ऊंचे स्वरसे गान करतेभये गोपीके मन और माधवके मन आनंदको प्राप्त होगया तहींपर महामनवाले पाण्डवेयको मैंने देखा। तब परीक्षित् राजा मेरेसे पूर्वकालविषय श्रीभागवत सुना रहा सो श्रीभागवतके पुरातन वक्ता जान मेरेको नमस्कार किया और हाथजोड प्रेमसे बोला। राजोवाच ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं भागवतं मया ॥
नित्य लीलालयो वासो लब्धो गोलोकसंज्ञकः ॥ १९० ॥
कृतार्थीकृत एवाहं भवता करुणात्मना ॥
एप मे प्रश्नविपयो वर्त्तते मुनिसत्तम ॥ १९१ ॥
कदाचिदिह खेलंतं कृष्णं वृंदावने वने ॥
आगतः पुरुपः कोऽपि स्निग्धश्यामलविग्रहः ॥ १९२ ॥
समानरूपमाधुर्य्यः समवीर्य्यवयोगुणः ॥
चापेपुधिधरो वीरो वामे च प्रिययान्वितः ॥ १९३ ॥
तं दृष्ट्वा प्रियया साकं ववन्दे नन्दनंदनः ॥
रामाय नम इत्युक्त्वा कृष्णस्तत्राविशत्स्वयम् ॥ १९४ ॥
तं दृष्ट्वा चकिता आसन्देवीदेवगणा अपि ॥
आगंतुकःसपुरुपो वनमालाधरो विभुः ॥ १९५ ॥
मुरलीभूपितो भूत्वा विरेजे रासमण्डले ॥
गोपीमण्डलमध्यस्थो ननर्त्त च तथा पुरा ॥ १९६ ॥
एतच्च चरितं दृष्ट्वा विस्मिता अभवन्सुराः ॥
एतत्ते ब्रह्मराताय पृच्छामि च मुहुर्मुहुः ॥ १९७ ॥
किमेतद्भगवन्नासीत्कृष्णस्य पुरुपस्य च ॥

किमर्थं भगवान्कृष्णः पुरुषं प्रविवेश ह ॥ १९८ ॥
एतन्मे वद योगीन्द्र शुक कारुणिकोत्तम ॥
तदाहं विष्णुराताय प्रावोचं मधुरं वचः ॥ १९९ ॥
इति श्रीशुकसंहितायां प्रथमाध्याये द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अर्थ-राजा बोले, हे भगवन्! आपकी कृपाकरके पूर्वकालविषय मैंने श्रीभागवत सुना और उसीके प्रभावसे नित्य दिव्यलीलाके स्थान सर्वोपरि गोलोकका वास प्राप्त हुआ। हे करुणाके स्वरूप! मैं कृतार्थ होगया आपने कृतार्थ कर दिया हे मुनिसत्तम! यह एक प्रश्न मेरे हृदयमें है कि कभी यह कृष्णचन्द्रजीको वृंदावनमें क्रीडा करतेहुये बड़े कोमल स्निग्ध श्यामलस्वरूपवाले कोई एक पुरुष आये सो स्वरूप माधुर्यवीर्य अवस्या सब गुण करके बराबर याने श्रीकृष्णहीके समान और हाथमें धनुर्बाण धारण किये बायें ओर परम प्रिया करके युक्त उनको देख कर प्रियाके सहित नन्दनन्दन श्रीकृष्णजीने नमस्कार किया 'रामाय नमः' ऐसा कहिके और उसी स्वरूपमें दोनों प्रिया प्रियतम प्रवेश करगये तिनको देख करके सब देवी देवतागण भी चकित होगये सो वह कौन पुरुष समर्थ वनमाला धारण कियेहुये आये मुरली धारण करके रासमण्डलमें प्रकाश करने लगे और जैसे प्रथम गोपियोंके बीचमें श्रीकृष्णचन्द्रजी नृत्य करतेरहे तैसे ही नृत्य करने लगे। यह चरित्र देखकर देवता सब आश्चर्यको प्राप्त होगये सो हे भगवन्! बार २ मैं पूंछता हूं कि यह को हैं? कृष्ण और पुरुष और किस लिये कृष्णभगवान पुरुषके स्वरूपमें प्रवेश किये॥ सो हे करुणाके स्थान योगीराज श्रीशुकाचार्य स्वामी! यह मेरेको कहिये तब वह परीक्षितजीके बोधके लिये मधुर वचन बोला। यथा-

श्रीशुक उवाच ॥

शृणु राजन्निदं तत्त्वं विष्णुरात रहस्यकम् ॥
रामस्य देवदेवस्य परमैश्वर्य्यसूचकम् ॥ २०० ॥
न वै स पुरुषः कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तमः ॥
श्रीरामसंज्ञितं धाम परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २०१ ॥
कदाचिच्चित्रकूटाद्रौ क्रीडंतं पुरुषोत्तमम् ॥
मृगयाऽभिरतं वीरं रामं प्रोवाच जानकी ॥२०२ ॥

अर्थ-हे राजन्! विष्णुरात यह परम तत्त्व रहस्यको सुनो कैसा है कि श्रीरामदेवका परम ऐश्वर्यके सूचित करनेवाला है। न वह निश्चय करके कोई पुरुष ही हैं

और न वह पुरुषोत्तम ही हैं वह तो श्रीरामधाम (साकेत) वासी परब्रह्म सनातन हैं। कभी चित्रकूटपर्वतमें क्रीडा करतेहुए पुरुषोत्तम भगवान्को मृगोंके शिकारमें रत वीरभद्र श्रीरामजीको श्रीजानकीजी बोलीं ॥ श्रीसीतोवाच ॥

अतः परं प्रिय भवान् मृगयातो निवर्त्तताम् ॥
प्रस्वेदकणिकाभिस्ते मुखचन्द्रो विभूषितः ॥ २०३ ॥
सूर्य्योऽपि चान्द्रिमाक्रांतस्तपस्तेपे महातपाः ॥
किंचित्कुंजं समालंव्य स्थीयतामधुना प्रिय ॥ २०४ ॥
इत्युक्तः प्रियया रामो माधुरीकुंजमुत्तमम् ॥
प्राविशच्चित्रकूटाद्रिं कंदरांतरशोभितम् ॥ २०५ ॥
नवमल्लिवनामोदप्रमोदमधुभिर्वृतम् ॥
नवचूतांकुरास्वादमंजुलीलोपकोकिलम् ॥ २०६ ॥
चन्दनानिलसौरभ्यसुवासितदिगंतरम् ॥
लवंगलतिकापाकसमुद्धररजःकणम् ॥ २०७ ॥
सर्वर्तु शोभया जुष्टं विशालसरसान्वितम् ॥
फुल्लकह्लारकमल कदंबैकसुगंधिना ॥ २०८ ॥
तत्र गत्वा दंपती तौ सीतारामौ मनोहरौ ॥
प्रसूनशय्यां मृदुलामध्यासतुरनुत्तमाम् ॥ २०९ ॥
दर्शनस्पर्शनालापप्रियसंगसुनिर्वृतौ ॥
तत्र सुस्थं प्रियं रामं सीता प्रोवाच सस्मितम् ॥ २१० ॥

अर्थ-जानकीजी बोलीं हे प्रिय ! अब आप मृगके शिकारसे निवृत्त होइये काहेसे कि प्रस्वेद (पसीना) के बिंदुओंसे आपका मुखचन्द्र विभूषित होरहाहै, सूर्य भी अत्यन्त करके तप रहेहैं इससे हे प्रिय ! इस काल थोरासा कुंजलताके अवलंबमें वैठिये ऐसा कह प्रिया प्रियतम दोनों श्रीसीता रामजी दिव्य माधुरी कुंजमें प्रवेश कर गये जो कि, चित्रकूट (कामद) गिरिके कंदरान्तर शोभित है। कैसा है कि नवीन मल्लिका अशोक वन पुष्पों करके युक्त आनन्द देनेवाले भौंरों करके शोभित है नवीन आम्र फल सुस्वाद वाले और भी अनेक फल फूलादि करके शोभित है भौंरा गुंज रहे हैं कोकिला वोल रहेहैं सुन्दर मलयवासयुक्त शीतल सुगन्ध मन्द वायु वह रहे हैं उससे दशोदिशा सुगंधित होरही हैं और लवंग लतासे १७

उड रहेहैं। सब ऋतुओंमें शोभासे युक्त है मध्यमें एक विशाल सर (पोखरा) विचित्र मणियोंसे निर्मित शोभित है। जिसमें चारों प्रकारके कमल खिल रहेहैं और चारों ओर कदम्बके सुगंधिसे सुगंधित होरहाहै तहां दोनों श्रीप्रिया प्रियतम श्रीसीता रामजी जाकरके सुन्दर पुष्प शय्यापर जो कि अति सुन्दर कोमल है उसपर दर्शन स्पर्शन आलाप प्रियसंग करके दोनों तहां सावधान होकर बैठे तब प्रिय श्रीरामजीको श्रीजानकीजी हंसकर बोलीं ॥ श्रीसीतोवाच ॥

आवां प्रियनिकुंजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम् ॥
कच्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविव व्रजे ॥ २११ ॥

श्रीराम उवाच ॥

त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी ॥
मदंश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनंदनः ॥ २१२ ॥
इत्युक्त्वा दर्शयामास तत्र वृंदावनं महत् ॥
यमुनाजलकल्लोलशीतलीकृतमारुतम् ॥ २१३ ॥
नित्यं गोवर्द्धनगिरिच्छायाहरितकाननम् ॥
विस्तीर्णद्वादशवनं रमणीयसुरोचितम् ॥ २१४ ॥
द्वादशोपवनारामो वैकुण्ठालयसौख्यदम् ॥
नंदगोकुलमानन्दं हंसाकलितगोधनम् ॥ २१५ ॥
नृत्तकीमण्डलायुक्तं वत्सवर्द्धितशोभितम् ॥
उदारनंदगृहिणी यशोदाभाग्यभूपितम् ॥ २१६ ॥
कृष्णरासरसोन्मत्तगायद्गोपीकदंबकम् ॥
कृष्णं च राधिकायुक्तं दर्शयामास राघवः ॥ २१७ ॥
श्रीमद्युगलनाट्येन नटंतं प्रेयसीयुतम् ॥
दर्शयित्वा प्रियां प्राह रामस्त्रैलोक्यसुंदरः ॥ २१८ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! सर्व ऋतु करके शोभित यहां माधुरी कुंजमें आप हम दोनों कभी नहीं राधाकृष्णसे विहार किया इससे दोनों विहार करें तब रामजी बोले कि हे प्रिये ! तुम्हाराही अंश वह वृन्दावनेश्वरी राधाजी हैं और मेरे ही अंश गोपेन्द्रनन्दनन्दन श्रीकृष्णजी हैं ऐसा कहकर तहां महान् वृन्दावन देखाते भये जहां यमुना-जल कल्लोलते हैं और शीतल सुगन्ध मन्द वायु वहतेहैं। नित्य गोवर्धन पर्वत

है जिसकी छायामें हरित वन है वह सुन्दर देवताओं करके भावित विस्तार द्वादश वन करके युक्त है और द्वादश उपवन हैं ॥ वह वैकुण्ठस्थानके तुल्य सुखप्रद है। नन्दजीके गोकुल हंसके तुल्य गोधन करके युक्त है; भिन्न २ नृत्यस्थान हैं सो नृत्यकरनेवाले मंण्डल करके युक्त है। जहां छोटे २ बछडों करके परिपूरित शोभित है, और बडी उदार नन्दस्त्री श्रीयशोदाजी भाग्य करके भूषित हैं और श्रीकृष्ण रासरसकाके उन्मत्त गान करते हुए सब गोपीको और राधिकाजीके सहित श्रीकृष्णचन्द्रजीको श्रीराघवजी देखाते भये। श्रीमान् युगल स्वरूपके नृत्य करते हुये प्रेम युक्त देखा करके प्रिया श्रीसीताजीसे त्रिलोक सुन्दर श्रीरामजी बोले। यथा-श्रीराम उवाच ॥

प्रिये तव ममासौ च द्वाविमौ सह दंपती ॥
माधुर्य्यलीलाकलिकाललितौ विश्ववल्लभौ ॥ २१९ ॥
ततस्तद्युगलं श्रीमद्राधाकृष्णात्मकं महत् ॥
सीतारामात्मकं युग्मं प्राविशन्नतिपूर्वकम् ॥ २२० ॥
ततः प्रवृत्ते रामश्च सीतारामप्रधानकः ॥
गोपीजनकरोद्भूतमृदंगाऽऽनककाहलः ॥ १२१ ॥
मिथः सहचरीवृन्दकरतालविराजितः ॥
झर्झरः शंखभेर्य्यादिवादित्रविततध्वनिः ॥ २२२ ॥
युगलाऽनुनयानंदी युगलो वयदीपितः ॥
मिथो युगलनाटचैक्यतुष्टाऽखिलसखीजनाः ॥ २२३ ॥
श्रीराममुरलीनादवर्द्धितानि सकौतुकः ॥
सीता कलस्वरालापमुह्यत्सहचरीगणः ॥ २२४ ॥
कामोत्साहप्रदालापचुंबनालिंगनादिभिः ॥
नर्मस्पर्शैर्नर्महासैर्भावैश्च बहुरूपकैः ॥ २२५ ॥
अनेकैर्मधुरालापैर्भूपितश्च महोत्सवः ॥
शश्वद्युगलनाटचेन सीतारामौ विरेजतुः ॥
कदाचिद्गोपिकातुल्यसख्या केनात्मना विभुः ॥ २२६ ॥

अर्थ-श्रीरामजी बोले, हे प्रिये! आपका और मेरा स्वरूप यह दोनों प्रिया प्रियतम श्रीराधाकृष्ण कैसे हैं कि माधुर्य्य लीलाकरके युक्त और संपूर्ण

संसारको दोनों प्रिय हैं ऐसा कहा तिसके पीछे राधाकृष्णात्मक दोनों महान् स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूपमें नमस्कारपूर्वक लीन होगये। भाव-राधाजी श्रीसीताजीमें लीन होगई और श्रीकृष्णजी श्रीरामजीमें लीन होगये। तब केवल प्रधान श्रीसीतारामजी रहगये सोई वृंदावनमें रासलीला करनेलगे उस समय गोपियोंके हाथमें बडे अद्भुत मृदंगादि वाजा बजनेलगे सखियोंकी वृंद एकसे एक मिलीहुई और करताल करके शोभित किसीके हाथमें झर्झर (झांझ) है किसीके हाथमें शंख है किसीके हाथमें भेरी (भेंड) वाजा है कोईके हाथमें वीन है कोईके हाथमें मुरचंग है यानें सब वाजा लिये हैं सो विस्तार शब्द होनेलगा उस समयमें सब युगलस्वरूपके अनुकूल कार्य करनेलगीं और श्रीसीतारामजी भी दोनों किशोर अवस्थाकरके प्रकाशित होगये और दोनों परस्परमिल हाव भाव युक्त ऐसा विचित्र नृत्य किया कि उस नृत्यादि करके सब सखीजन संतुष्ट होगई श्रीरामजीने मुरलीनादसे और नानाप्रकारके कौतुकसे सबको आनंद करादिया तैसी ही, श्रीजानकीजीके सुंदरस्वर आलापसे सब सहचरीगण मोहिगई वह चुंबन आलिंगनादि सब कामके बढाने वाले हैं। नर्म (कोमल) स्पर्शसे कोमल हाससे कोमल भावसे अनेक विधि अलापसे श्रीसीतारामजीने रासमण्डलको आनंदसे भूषित करदिया निरंतर युगलस्वरूप श्रीसीतारामजीके नृत्यकरके प्रकाशित होगये कभी गोपिकासमान होजाते हैं, कभी सखीके रूप होजातेहैं, कभी गुप्त होजातेहैं कभी प्रगट होजातेहैं इस प्रकारके त्रिलोकसुंदर श्रीरामजीको रासमें देवतालोग देखते भये।

रासे नृत्यन्सुरैर्दृष्टो रामस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥
कदाचिद्गोपिकायुग्ममध्यवर्तीकिशोरकः ॥ २२७ ॥
रासे नृत्यन्बभौ रामो नीलमेघमनोहरः ॥
रत्नप्रतप्तसौवर्णकिरीटशिखिपिच्छकः ॥ २२८ ॥
गुंजाहारधरः श्रीमान्प्रोल्लसज्जघनाम्बरः ॥
नृत्यतालकरोद्भावमणिरत्नांगुलीयकः ॥ २२९ ॥
मुरलीनादमधुरः कोटिकंदर्पसुन्दरः ॥
एवं नंदात्मजः कृष्णस्त्वावतारसमापनम् ॥ २३० ॥
रामं प्रविशति श्यामं सच्चिदानंदविग्रहम् ॥
सोऽद्यापि क्रीडति गिरौ चित्रकूटे मनोहरे ॥ २३१ ॥
नित्यं वृन्दावने एव माधुरीकुंजमध्यगे ॥

आगामिनि द्वापरांते कंसादिभिरुपद्रुते ॥ २३२ ॥
लोके धर्मस्य रक्षार्थं वसुदेवस्य वेश्मनि ॥
प्रादुर्भूय व्रजेन्द्रस्य गोकुले विहरिष्यति ॥ २३३ ॥
एवं कृष्णोऽविशद्रामे पूर्णे स्वानन्दविग्रहे ॥
दृष्टो रामः परं तत्त्वं यत्र चापि न गोचरः ॥ २३४ ॥
इति श्रीशुकसंहितायां प्रथमाध्याये तृतीयपादः ॥ ३ ॥

अर्थ–कभी दो गोपीके मध्यमें नित्य किशोर हो जातेहैं ऐसे रासमण्डलमें नृत्य करतेहुये नीलमेघके समान मनोहर होगये और रत्नजडित प्रतप्तसुवर्णके शिरपर किरीट मोरपंख (मोरमुकुट) करके शोभित गलेमें गुंजाके हार (माला) धारण कियेहैं श्रीमान् कांतियुक्त तडितसे पीताम्बर शोभित है नृत्यमें भावयुक्त ऊर्ध्वहाथ अरुण है तिसमें मणिरत्ननिर्मित मुद्रिका (अंगूठी) शोभित है और मुरलीकी नाद बहुत मधुर है कोटि कामसे सुंदर हैं ऐसा नंदात्मज श्रीकृष्णजी स्वयं अपने अवतारके कारण श्रीरामजीके श्यामसच्चिदानंदके स्वरूपमें प्रवेश करतेहैं वही आज भी सुंदर चित्रकूट पर्वतमें क्रीडा करतेहैं जो कि वृंदावन नित्य है उसी ही वृंदावन माधुरी कुंजके मध्यमें विहार करतेहैं वही कृष्ण आगे द्वापरान्तमें कंसादिके उपद्रवसे लोकमें धर्मरक्षार्थ वसुदेवके घरमें उत्पन्न होकर व्रजेन्द्र नंदजीके गोकुलमें विहार करेंगे ॥ ऐसा श्रीकृष्णजी अपने पूर्णानन्दस्वरूप श्रीरामजीमें प्रवेश करतेहैं सो रामजीके परतत्त्व आपने अगोचर गोलोकमें देखा जहां भी विषयसे रहितहैं फिर भी श्रीशुकाचार्यस्वामी बोले। यथा–

तत्र रासे प्रादुरासीद्ब्रह्माणी ब्रह्मकोटयः ॥
वैष्णवी विष्णुकोटयश्च रुद्राणी रुद्रकोटयः ॥ २३५ ॥
सर्वाश्च देवतास्तत्र गोपिकाभावभाविताः ॥
रासमण्डलमध्यस्था ननृतुः स्वामिना सह ॥ २३६ ॥
तथा षष्टिसहस्राणि दण्डकारण्ययोगिनाम् ॥
गोपीभावं समासाद्य रेजुः श्रीरासमण्डले ॥ २३७ ॥
श्रुतयश्चैव कालश्च रासमण्डलमध्यगाः ॥
गोपीरूपधरा रेजुर्महासौभाग्यभूपिताः ॥ २३८ ॥
कालश्च तत्र नियतं पूर्णिमाशारदी हि सा ॥

वातश्च तत्र सततं सुरभिश्चंदनद्रुमैः ॥ २३९ ॥
भूमिश्च रत्नमाणिक्यप्रततकनकोऽज्वला ॥
जलं यमस्वसा साक्षात्पीयूषाधिकसुंदरम् ॥ २४० ॥
उज्ज्वलांशुचयो यत्र मध्यरात्रगतः शशी ॥
राकापि या प्रभोर्लीला सा नित्यैव न संशयः ॥ २४१ ॥
सीता च सुंदरी यत्र सर्वलीलाधिदेवता ॥
चित्रकूटाद्रिके रम्ये यद्वृंदावनमद्भुतम् ॥ २४२ ॥
गोलोकोऽयं स एवात्र दृश्यते पुरतस्तव ॥
सीताऽऽभिलापसंभूत्यै श्रीरामेण विनिर्मितः ॥ २४३ ॥

अर्थ-तहां रामजीके रासमें कोटि ब्रह्मा कोटि ब्रह्माणी कोटि लक्ष्मी कोटि विष्णु और कोटि शिव कोटि पार्वती उत्पन्न हुये । तहां सब देवता लोग गोपिका भावको प्राप्त होगये और अपनी स्वामिनीके सहित रासमण्डलमें नृत्य करनेलगे तैसे ही ६० हजार दण्डक वनवासी सब ऋषि लोग भी गोपिका भावको प्राप्त होकर श्रीरासमण्डलमें प्रकाश करने लगे और श्रुति सब तथा काल ये सब भी रासमण्डलमें गोपीरूप धरके महासौभाग्यसे भूषित होकर प्रकाश करनेलगे और काल. तहां नेमपूर्वक ६ मासकी सरदपूर्णिमाकी रात्रि होगई और वायु तहां सर्वदा मलयवास युक्त वहनेलगा पृथिवी सर्वत्र माणिक्यरत्न मय तप्त कनकसे होगई जल सर्वदा साक्षात् अमृतसे भी अधिक सुन्दर होगया और जहां मध्य रात्रिकी प्राप्ति होनेसे उज्ज्वल पवित्र चन्द्रमा होगया तथा पूर्णिमाकी रात्रि भी महाराजके रासलीला करके प्रभायुक्त होगई और जहां श्रीजानकीजी सुन्दरी सब लीलाकी अधि देवता हैं वह सुन्दर वृन्दावन चित्रकूट पर्वतमें है जो आश्चर्य मय है वही यह गोलोक सर्वोपरि इहां आपके आगे देख परता है सो श्रीसीताजीके अभिलापसे श्रीरामजीने निर्माण कियाहै यह सुनकर राजा बोले । यथा-विष्णुरात उवाच ॥

कथं सीताऽभिलापेण गोलोकं निर्ममे प्रभुः ॥
एतन्मम समाचक्ष्व मुनीन्द्र परिपृच्छतः ॥ २४४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥

कल्पादौ भगवान् रामः स्वेऽच्छामात्रेणचोदितः
त्रैलोक्यं कृतवान्श्चांगादाविर्भावं प्रदर्शयन् ॥ २४५ ॥

अमोघमुत्तवान्बीजमंशुं सप्तार्णवेषु सः ॥
हिरण्यगर्भसंकाशः सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ २४६ ॥
ततश्चराचरस्यादौ तत्त्वसृष्टिं विनिर्ममे ॥
तेषु चैतन्यमाधाय ब्रह्माण्डं संजघाट सः ॥ २४७ ॥
उच्चावचानि भूतानि रचयामास विश्वकृत ॥
महीं रचितवान्देवः सप्तसागरसंवृताम् ॥ २४८ ॥
पर्वतान् विविधान्रम्यान्देवगंधर्वभोगवान् ॥
सरांसि रम्यरूपाणि राजहंसाश्रयाणि च ॥ २४९ ॥
उत्फुल्लकमलामोदवारीणि रुचिराणि च ॥
मेरुं रचितवांस्तत्र स्थानानि त्रिदिवौकसाम् ॥२५० ॥
एवं कृत्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुपम् ॥
देवानामसुराणां च मनुष्याणां च सौख्यदम् ॥ २५१ ॥
वासं प्रकल्पयामास गृहारामादिशोभितम् ॥
ततः सीता स्वयं प्राह रामं कमललोचनम् ॥ २५२ ॥

अर्थ-राजा परिक्षित बोले, हे मुनीन्द्र ! श्रीजानकीजीके अभिलाष करके प्रभु श्रीरामजी गोलोक कैसे निर्माण किये यह कहिये देखके पूछते हैं। श्री शुकाचार्य स्वामी बोले कि कल्पके आदिमें भगवान् श्रीरामजीने अपनी इच्छाकी प्रेरणा मात्रसे तीनोंलोक अपने शरीरसे उत्पन्न किये तहां प्रथम अमोघ वैष्णवी वीर्य तेज-युक्त इच्छासे जल प्रगट कर उसमें छोड़ दिया. वह वैष्णवी वीर्य इच्छा करके कोटि सूर्यसे प्रकाशवाला सुवर्णसे कांतिवाला एक गोलाकार अंड होगया उस अण्डमेंसे सर्वलोकोंके रचनेवाले हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा रूपसे प्रगट हुये उसीसे सब चराचर पैदा हुए उसीमें चैतन्य स्थापन कर कोटि २ ब्रह्मांड रचन किया तथा ऊंच नीच योनि सब जीवोंको ब्रह्माजी रचते भये और सप्त सागरकरके युक्त पृथिवीको रचा तथा देव गंधर्वके भोगवान् सुंदर नाना प्रकारके पर्वत रचे। सुंदर रमणीय राजहंसों करके युक्त सरोवर रचे जिनमें दिव्य जल भरा है और नाना प्रकारके कमल आनंददायक खिलेहैं। सुमेरुपर्वत लक्षयोजन वाले रचे त.। इन्द्रादि ३३ कोटि देवताओंके भिन्न २ स्थानोंको रचा ऐसे सब देवता असुर मनु-

च्योंके सहित संपूर्ण संसारको रचकर तिसपर सब देवता सब असुर मनुष्योंके सुखदेने वाले घर बाग सुंदर रचे तब कमललोचन श्रीरामजीसे स्वयं श्रीजानकीजी बोलीं। यथा-श्रीसीतोवाच॥

इच्छामात्रेण ते कांत सरत्नं भुवनत्रयम् ॥
अतीव सुंदरं भाति प्रासाद इव भूयते ॥ २५३ ॥
स्वर्गमृत्युतलांतस्थः सततं सुखमासने ॥
स्वेषु स्वेषु निवासेषु गृहारामादिमत्सु च ॥ २५४ ॥
पुरातनमिदं स्थानमस्माकं तु तदेव हि ॥
कोशलाख्यं पुरं दिव्यं प्रलयेऽप्यविनश्वरम् ॥ २५५ ॥
इदं त्रैलोक्यमखिलं प्रलयेऽनंक्ष्यति प्रभो ॥
अविनश्वरमेवैकमयोध्यापुरमद्भुतम् ॥ २५६ ॥
तत्रैव रमसे नाथ ह्यानन्दरसनिर्वृतः ॥
नवीनं न कृतं स्थानं स्वभोगाय कथं प्रभो ॥ २५७ ॥
स्वतंत्रेच्छोऽसि भगवंस्तथापि च निबोध मे ॥
मदुत्कण्ठावशेनैव कुरु स्थानं मनोरमम् ॥ २५८ ॥
अयोध्यायाः प्रतिकृतिर्यत्र सर्वं विलोक्यते ॥
राजानः कुर्वते नव्यं पुरस्थानेषु सत्स्वपि ॥ २५९ ॥
एवमभ्युदितो रामः प्रियया साभिलापया ॥
सर्वेषां चैव लोकानामुपरि स्थानमद्भुतम् ॥ २६० ॥
गोलोकं कल्पयामास प्रादुर्भाव्य स्वलोकतः ॥
अयोध्यायाः प्रतिकृतिर्यत्र सर्वापि दृश्यते ॥ २६१ ॥

अर्थ-श्रीजानकीजी बोलीं कि हे स्वामी जी! आप अपनी इच्छामात्रसे सर्व रत्नोंसे युक्त तीनों लोकोंको अत्यंत सुंदर प्रकाशमय प्रासाद (महल) के समान स्वर्ग अर्थात् भूर्लोक, भुवः लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल पर्यंत सुखासन-पूर्वक अपने२ निवासस्थानमें घर बाग तलावादि रचा परन्तु यह मेरा स्थान तो सदैव पुरातन (पुराना) है जो कि कोशल (अयोध्या) साकेत नामसे विख्यात

है जिसका प्रलयमें भी नाश नहीं है। यह तीनोंलोक प्रलयमें नाश होजातेहैं केवल एक आश्चर्यमय अयोध्या ही पुरी अविनाशी है हे नाथ! तँही पुराने स्थानमें विहार करते हैं परन्तु अपने भोग विलासके लिये हे प्रभो! नवीन स्थान क्यों न किया? हे भगवन्! यद्यपि आप स्वतंत्र हैं तथापि मैं निवेदन करतीहूं कि मेरे प्रेम करके कोई सुन्दर नवीन स्थान करो। जहां श्रीअयोध्याजीके प्रतिबिंब सब वैभव विलास देखपरें काहस कि राजालोग भी नवीन पुर स्थापन करते हैं। अपने सुखके लिये वैसेही आपभी करिये ऐसा कहेसे श्रीरामजी श्रीसीताजीके अभिलापसे सब लोकोंके ऊपर विचित्र स्थान गोलोक अपने लोक साकेतके अंशसे कल्पित करतेभये जहां सब वैभव श्रीअयोध्याजीके प्रतिबिम्ब देखपरतेहैं।

यमुनायाः परिणता सरयू सरसा सरित् ॥
अभूद्गोवर्द्धनत्वेन दिवि रत्नमयो गिरिः ॥ २६२ ॥
प्रमोदवनमत्रासीद्दिव्यं वृन्दावनं वनम् ॥
पारिजाततरुर्जातो वंशीवटतरुर्हि सः ॥ २६३ ॥
ते च रासविलासाद्याः प्रादुरासुः समंततः ॥
आभीरोऽसुखिनो नाम रामधात्रीपतिः पुरा ॥ २६४ ॥
स एव समभून्नंदो मांगल्या च यशोदिका ॥
त एव गोपीगोपाद्या लीलापरिकराश्च ते ॥ २६५ ॥
सैव श्रीजानकी देवी वृपभानुसुताऽभवत् ॥
अशोकवनगा तत्र ह्यत्र वृंदावनेश्वरी ॥ २६६ ॥
तया सह बभौ रामो वंशीवादनकौतुकी ॥
नित्यरासविलासादिकुर्वाणः सुमनोहरम् ॥ २६७ ॥
गोलोकमखिलं वीक्ष्य लीलापरिकरान्वितम् ॥
सद्यः प्रसन्नहृदया प्रोवाच निजवल्लभम् ॥ २६८ ॥

श्रीप्रियोवाच ॥

दृष्ट्वेदमद्भुतं स्थानं संपूर्णा मे मनोरथाः ॥
अयोध्यायाः प्रतिकृतिः कच्चित्तावत्ततोधिकाम् ॥ २६९ ॥

आवां यत्रैव रंस्यावः सुचिरं कामकेलिभिः ॥
अतीव सुंदरे स्थाने सच्चिदानंदमंदिरे ॥ २७० ॥
एवमुक्तस्तया सार्द्धं रेमे वृन्दावने प्रभुः ॥
यथा गायंति मुनयो महाभावविभूपिताः ॥ २७१ ॥

इति श्रीशुकसंहितायां प्रथमाध्याये चतुर्थपादः ॥ ४ ॥

अर्थ-श्रीयमुनाजी जो वृन्दावनमें हैं सोई गोलोकमें विरजा नामसे प्रसिद्ध हैं सो सरयूजीसे हुई और गोवर्द्धन गिरि दिवि (क्रीडा) रत्नगिरि (मणिपर्वत) से हुआ और प्रमोद वनसे दिव्य वृन्दावन हुआ कल्प वृक्षसे वंशी वट हुआ और इस रास विलाससे जो उत्पन्न हुए आभीर (गोप) दुःखित नामवाले पूर्व धात्री पति रहे वही नन्दजी हुए और मांगल्या यशोदा हुई तथा पूर्व लीलाके जे परिकर रहे ते सब गोपी गोपादिक हुए । जानकीजी राधिकाजी हुई और अशोकवनमें जो देवी रही वही वृन्दावनेश्वरी (वृन्दादेवी) हुई, सो उनके सहित रामजी राधाकृष्ण हो वंशीनादमें निपुण बडे कौतुकी नित्य रास विलासादि लीला सुंदर करते भये। सम्पूर्ण गोलोक लीला परिकरसे युक्तसे देखके शीघ्र प्रसन्न हृदयसे श्रीप्राणप्यारेसे श्रीजानकीजी बोलीं कि इस अद्भुत स्थानको देखकर मेरा मनोरथ सब प्रकारसे पूर्ण होगया इहां अयोध्याजीका विभव थोरा है नवीन रचना विशेष है इससे उससे भी अधिक है इस लिए आपहम दोनों अत्यन्त सुन्दर स्थान सच्चिदानंद रूप मन्दिरमें बहुत दिन पर्यत यहांपर कामकेलि (विहार) करेगें ऐसा कहिकर प्रिया सहित वृन्दावनमें विहार करने लगे जैसा मुनि लोग महाभावसे भूपित करके रहस्य लीला गातेहैं । हे शिष्य ! ऐसा भी श्रीशुकदेवसंहितामें वर्णन है इससे श्रीरामजीसे परे ब्रह्म दूसरा कोई नहीं हैं बांकी पक्षपात करना वृथा मिथ्या कहना है जो कोई श्रीसीतारामजीको छोडकर दूसरेको ब्रह्म प्रतिपादन करतेहैं वह मूर्ख परतत्त्वसे विमुख हैं विशेष क्या कहें हे शिष्य ! सदाशिव संहिताके प्रथमाध्यायमें लिखा है कि साकेत लोकमें चार द्वार हैं तिसमें पश्चिम द्वारपर वृन्दावन है जहां विभीषणजी द्वारपाल हैं यथा-

पश्चिमां पाति धर्मात्मा राक्षसेन्द्रो हरिप्रियः ॥
पूर्वमावृत्य विश्वात्मा सुग्रीवस्तेजसात्मकः ॥ २७२ ॥
उत्तरं रक्षति वीरो वालिपुत्रो मम प्रियः ॥

दक्षिणं तु सदा पाति हनूमान्रामवत्सलः ॥ २७३ ॥
सर्वसत्त्वगुणोपेतः सर्वसत्त्वनिकेतनः ॥
महाशंभुः स्वयं सोऽपि कपिरूपो दुरासदः ॥ २७४ ॥
मत्स्यकूर्मवराहाश्च नृसिंहहरिवामनौ ॥
भार्गवो हलिकंसारिबुद्धकल्किभिरुच्यते ॥ २७५ ॥
उपास्यमानं देवेशं देवानां प्रवरं विभुम् ॥
साकेतपश्चिमद्वाराद्वृंदावनमदूरतः ॥ २७६ ॥
गोगणैरावृतः श्रीमान्क्वणद्वेणुविनोदकृत् ॥
सर्वरासरसोत्पन्नो गोपकन्यासमावृतः ॥ २७७ ॥
गोवर्द्धनगिरिस्तत्र यत्र देवः प्रतिष्ठितः ॥

(पुनः द्वितीयाध्यायेऽपि)

अवतारैरसंख्यातैः प्रधानैर्दशभिस्तथा ॥ २७८ ॥
वेदैः सांगोपनिषदैर्यज्ञैर्बहुविधैरपि ॥
सेव्यमाने परे रम्ये गुणावासे परं पदे ॥ २७९ ॥

अर्थ–पश्चिम ओर धर्मात्मा राक्षसेंद्र विभीषणजी रक्षा करते हैं पूर्वको विश्वरूपमा तैजसात्मक श्रीसुग्रीवजी रक्षा करतेहैं और उत्तर वालिपुत्र मेरा प्रिय वीरशिरोमणि अंगदजी रक्षा करतेहैं और दक्षिण द्वारकी रक्षा सर्वदा रामप्रिय महावीर श्रीहनूमानजी करते हैं जो सब गुण करके युक्त हैं सर्व सत्त्वके स्थान हैं वह महाशंभुजीभी स्वयं दुस्तर वानर रूप होकर श्रीरामसेवा करतेहैं और भी मत्स्य,कूर्म, वाराह और नरसिंह, हरि भगवान् वामन, परशुराम, बलदेव, कृष्ण, बुद्ध, कलंकी इन सब करके देवताओंमें श्रेष्ठ समर्थ करके स्वामी श्रीरामजी सेवित हैं। साकेतके पश्चिमद्वारके समीप ही वृन्दावन है जहां गोगण सर्वत्र पूर्ण है और श्रीमान् वेणु (वंशी)नादसे पूरित है। सर्वरासरसमें उन्मत्त गोपकन्या करके युक्त है तहां गोवर्द्धनगिरि है जहां गोवर्द्धननाथ देव प्रतिष्ठित हैं दूसरे अध्यायमें कहा है कि असंख्य अवतारहैं तिनमें दश अवतार प्रधान हैं तिन सब करके और उपनिषदोंके सहित चारों वेद करके तथा बहुप्रकारके यज्ञोंकरके, परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी सेवित हैं। ऐसे सर्वोपरि श्रीरामजी हैं कि जिनके सर्वावतार सेवा करते हैं और विशेष क्या कहना है। हे शिष्य ! पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें २२८ अध्यायमें लिखा है कि सबसे परे लोक

वैकुंठ है जहां कृष्णरूपसे परमात्मा रहते हैं वही परम धाम है गोगण और गोपगण करके युक्त है वही विष्णुजीके परम पद है जहां हजारों रत्नमय मंदिर विमानादिक शोभित हैं उसी वैकुंठके मध्यमें परम दिव्य श्रीअयोध्यानगरी है जिस वैकुंठके दशो दिशामें वासुदेवादिक लोक हैं वह वैकुंठ सप्तावरण करके युक्त है और वसिष्ठसंहिताके २६ अध्यायमें लिखा है कि सर्वोपरि वैकुठ है वैकुंठसे भी परे गोलोक है गोलोकके मध्यमें साकेतलोक है साकेतके पूर्व और श्रीमती मिथिलापुरी (जनकपुर) है दक्षिण चित्रकूट है पश्चिमवृंदावन है जहां कृष्णजी विहार करते हैं उत्तर महावैकुण्ठ है जहां सब पार्षदोंके सहित श्रीमन्नारायण रहतेहैं येही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारोंके कारण हैं येही नारायण रामचरित्रके मुख्याचार्य हैं और साकेतलोक सप्तावरण करके युक्त है जहां सब अवतारोंके भिन्न २ स्थान हैं सो विस्तारसे देखलो ॥

इति श्रीमदयोध्यावासिवैष्णवश्रीसरयूदासविरचितपरमः तत्त्वोपासनात्रय-
सिद्धांतः समाप्तः ॥ पद्मोत्तरखण्डे २२८ अध्याये-

अत्राहुतत्परं धाम गोपवेषस्य शार्ङ्गिणः ॥
तद्भाति परमं धाम गोभिर्गोपैस्सुखाह्वयैः ॥ २८० ॥
तद्विष्णोः परमं धाम यांति ब्रह्मसुखप्रदम् ॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम् ॥ २८१ ॥
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधे रत्नमयैर्वृतम् ॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या साऽयोध्येति प्रकीर्तिता ॥ २८२ ॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥ २८३ ॥
एते तु विभवावस्था ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितम् ॥ २८४ ॥
परावस्था तु देवस्य दीपादुत्पन्नदीपवत् ॥
प्राच्यां वैकुण्ठलोकस्य वासुदेवस्य मंदिरम् ॥ २८५ ॥
लक्ष्म्या लोकस्तथाग्नेय्यां याम्यां संकर्षणालयः ॥
सारस्वतस्तु नैर्ऋत्यां प्राद्युम्नः पश्चिमे तथा ॥ २८६ ॥

रतिलोकस्तु वायव्यामुदीच्यामनिरुद्धभूः ॥
ऐशान्यां शांतिलोकः स्यात्प्रथमावरणं स्मृतम् ॥ २८७ ॥
केशवादिचतुर्विंशत्यमी लोकास्ततः क्रमात् ॥
द्वितीयावरणं प्रोक्तं वैकुण्ठस्य शुभाह्वयम् ॥ २८८ ॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाणो लोका दिक्षु महत्सु च ॥
मत्स्यकूर्मादिलोकास्तु तृतीयावरणं शुभम् ॥ २८९ ॥
सत्याच्युतानंतदुर्गाविष्वक्सेनगजाननाः ॥
शंखपद्मनिधीलोकाश्चतुर्थावरणं शुभम् ॥ २९० ॥
सावित्र्या विहगेशस्य धर्मस्य च मखस्य च ॥
पचमावरणं प्रोक्तमक्षयं सर्ववाङ्मयम् ॥ २९१ ॥
शंखचक्रगदापद्मखड्गशार्ङ्गहलं तथा ॥
मौशलं च तथा लोकाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः ॥ २९२ ॥
षष्ठमावरणं प्रोक्तं मन्त्रास्त्रमयमक्षरम् ॥
ऐन्द्रपावकयाम्यानि नैर्ऋतं वारुणं तथा ॥ २९३ ॥
वायव्यं सौम्यमैशानं सप्तमं मुनिभिः स्मृतम् ॥
साध्या मारुद्गणाश्चैव विश्वेदेवास्तथैव च ॥ २९४ ॥
नित्याः सर्वे परे धाम्नि ये चान्ये च दिवौकसः ॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥ २९५ ॥
यद्गत्वा न निवर्त्तंते योगिनः संशितव्रताः ॥

इति ।

पुनः वशिष्ठसंहितायां भरद्वाज उवाच ॥

वेदा वेदांतसारज्ञ विरंचिप्रभवोत्तम ॥
भवता यत्परिज्ञातं तन्न जानंति केचन ॥ १ ॥
अतस्त्वां परिपृच्छामि हरेर्धाम्नां हि कारणम् ॥
किं च तत्परमं धाम माधुर्य्यैश्वर्य्यभूषणम् ॥ २ ॥

यत्र सर्वावताराणामादिकारणविग्रहः ॥
क्रीडते कृपया मे त्वं तत्त्वतः कथय प्रभो ॥ ३ ॥

वशिष्ठ उवाच ॥

साधु पृष्टं त्वया तात गुह्याद्गुह्योत्तमं महत् ॥
सारात्सारतमं वेदसिद्धांतं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥
श्रूयतां सावधानेन रहस्यमतिदुर्ल्लभम् ॥
रामभक्तं विना क्वापि न वक्तव्यं त्वयाऽनघ ॥ ५ ॥
सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोर्ध्वं प्रकृतिमण्डलात् ॥
विरजायाः परे पारे वैकुण्ठं यत्परं पदम् ॥ ६ ॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदिंद्रियगोचरम् ॥
तन्मध्ये रामधामास्ति साकेतं यत्परात्परम् ॥ ७ ॥
श्रीमद्वृंदावनादीनि तद्धामावरणेष्वपि ॥
सर्वेषामवताराणां संति धामान्यनेकशः ॥ ८ ॥
केवलैश्वर्यमुख्यानि धामान्येतानि सन्मते ॥
ऐश्वर्य्योपासका भक्ता ध्यायंति प्राप्नुवंति च ॥ ९ ॥
एभ्यः परतमं धाम श्रीरामस्य सनातनम् ॥
पृथिव्यां भारते वर्षे ह्ययोध्याऽख्यं सुदुर्ल्लभम् ॥ १० ॥
अखंडसच्चिदानंदसंदोहं परमाद्भुतम् ॥
वाङ्मनोगोचरातीतं त्रिषु कालेषु निश्चलम् ॥ ११ ॥
भूतलेऽपि च यद्धाम तथापि प्रकृतेर्गुणाः ॥
संस्पृशंति न तज्जातु जलानि कमलं यथा ॥ १२ ॥
कालः कर्म स्वभावश्च मायिकः प्रलयस्तथा ॥
ऊर्मयः षड्विकाराश्च न यत्र प्रभवंति हि ॥ १३ ॥
यदंशेन प्रकाशेते विभूती द्वे सनातने ॥
अधश्चोर्ध्वमनंते च नित्ये च परमाद्भुते ॥ १४ ॥
विभाति सरयूर्यत्र पश्चिमादि त्रिदिक्षु च ॥
विरजाद्याः सरिच्छ्रेष्ठाः प्रकाशंते यदंशतः ॥ १५ ॥

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि ॥
यो वै परतमः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट् ॥ १६ ॥
यस्यानंतावताराश्च कला अंशविभूतयः ॥
आवेशा विष्णुब्रह्मेशाः परं ब्रह्मस्वरूपभाः ॥ १७ ॥
स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः ॥
वात्सल्याद्यद्भुतानंतकल्याणगुणवारिधिः ॥ १८ ॥
राजेन्द्रमुकुटप्रोद्यद्रत्ननीराजितांघ्रिणा ॥
पित्रा दशरथेनैव वात्सल्यामृतसिंधुना ॥ १९ ॥
कौशल्याप्रमुखाभिश्च मातृभिर्भ्रातृभिस्त्रिभिः ।
सीतादिभिःस्वदारैश्च दासीभिश्चालिभिस्तथा ॥ २० ॥
सखिभिः समरूपैश्च दासैश्चामितविक्रमैः ॥
वशिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सुमंत्राद्यैश्च मंत्रिभिः ॥ २१ ॥
परिवारैरनेकैश्च सच्चिदानंदमूर्तिभिः ॥
भोगैश्च विविधैर्दिव्यैर्भोगोपकरणैस्तथा ॥ २२ ॥
सार्द्धं वसति यत्रैव स्वतंत्रः क्रीडते सदा ॥
क्षणं हित्वा न तद्धाम क्वचिद्याति स्वयं प्रभुः ॥ २३ ॥
तन्माधुर्य्यमयं नित्यमैश्वर्य्यान्तर्गतं ध्रुवम् ॥
रामस्यातिप्रियं धाम नास्त्यनेन समं क्वचित् ॥ २४ ॥
अतोऽयोध्यां रसज्ञा ये सर्वदा पर्य्युपासते ॥
प्राकृतैश्चक्षुभिर्नैव दृश्यते सा कथंचन ॥ २५ ॥
देहत्रयविनिर्मुक्ता रामभक्तिप्रभावतः ॥
तुरीयसच्चिदानंदरूपाः पश्यंति तां पुरीम् ॥ २६ ॥
अथ श्रीरामचन्द्रस्य यद्धाम प्रकृतेः परम् ॥
सच्चिद्घनपरानंदं नित्यं साकेतसंज्ञिकम् ॥ २७ ॥
यदंशवैभवा लोका वैकुंठाद्याः सनातनाः ॥ २८ ॥

सप्तावरणानि तस्याहं वक्ष्यामि मुनिसत्तम ॥
एकैकस्यां दिशि श्रीमान्दशयोजनसंमितः ॥ २९ ॥
अयोध्याया वहिर्देशः स वै गोलोकसंज्ञकः ॥
महाशंभुर्महाब्रह्मा महेन्द्रो वरुणस्तथा ॥ ३० ॥
धनदो धर्मराजश्च महांतश्च दिगीश्वराः ॥
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवा गंधर्वाश्चाप्सरोगणाः ॥ ३१ ॥
अन्ये च विविधा देवा नित्याः सर्वे द्विजोत्तम ॥
सप्तर्षयो मुनीन्द्राश्च नारदः सनकादयः ॥ ३२ ॥
वेदा मूर्त्तिधराः शास्त्रविद्याश्च विविधास्तथा ॥
सायुधाः सगणाः श्रीमद्रामभक्तिपरायणाः ॥ ३३ ॥
प्रथमावरण नित्यं साकेतस्य स्थिता मुने ॥
एतदंशसमुद्भूते देवा ब्रह्मशिवादयः ॥ ३४ ॥
यथाऽधिकारं ते सर्वे स्वस्वलोकेषु संस्थिताः ॥
निधयो नवधा नित्या दशाष्टौ सिद्धयस्तथा ॥ ३५ ॥
पंचधामुक्तयश्चापि रूपवत्यः पृथक्पृथक् ॥
कर्मयोगौ च वैराग्यं ज्ञानं च साधनैः सह ॥ ३६ ॥
द्वितीयाऽवरणे नित्यं स्वस्वरूपणे संस्थिताः ॥
सच्चिज्ज्योतिर्मयं ब्रह्म निरीहं निर्विकल्पकम् ॥ ३७ ॥
निर्विशेषं निराकारं ज्ञानाकारं निरंजनम् ॥
निर्वाच्यं निर्गुणं नित्यमनंतं सर्वसाक्षिकम् ॥ ३८ ॥
इन्द्रियैर्विषयैः सर्वैरग्राह्यं तत्प्रकाशकम् ॥
न्यासिनां योगिनां यच्च ज्ञानिनां च लयास्पदम् ॥ ३९ ॥
तृतीयावरणे तद्वै साकेतस्य विदुर्बुधाः ॥
गर्भोदकनिवासी च क्षीरार्णवनिवासकृत् ॥ ४० ॥

श्वेतद्वीपाधिपश्चैव रमावैकुंठनायकः ॥
सलोकाः सगणाः सर्वे मथुरा च महापुरी ॥ ४१ ॥
पुरी द्वारावती नित्या काशी लोकैकवंदिता ॥
कांची मायापुरी दिव्या तथा चावंतिकापुरी ॥ ४२ ॥
अयोध्यामेव सेवंते चतुर्थावरणे स्थिताः ॥
साकेतपूर्वदिग्भागे श्रीमतीमिथिलापुरी ॥ ४३ ॥
सर्वाश्चर्य्यवती नित्या सच्चिदानंदरूपिणी ॥
हर्म्यैः प्रासादवर्य्येश्च नानारत्नपरिष्कृतैः ॥ ४४ ॥
विमानैर्विविधैरुच्चैश्चित्रध्वजपताकिभिः ॥
भ्राजते परिखादुर्गविविधोद्यानसंकुला ॥ ४५ ॥
तस्यां श्रीमन्महाराज शीरकेतुः प्रतापवान् ॥
श्वशुरो रामचन्द्रस्य वात्सल्यादिगुणार्णवः ॥ ४६ ॥
निमिवंशध्वजः शूरश्चतुरंगवलान्वितः ॥
वेदवेदांतसारज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४७ ॥
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्य्यसमन्वितः ॥
दासीदासगणैर्नित्यं सेवितो वसति स्वराट् ॥ ४८ ॥
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान् कोशलाया गिरिर्महान् ॥
भ्राजते चित्रकूटः सच्चिन्मयानंद मूर्तिमान् ॥ ४९ ॥
नानारत्नमयः शृंगैर्विचित्रैश्चित्रपादपैः ॥
सुधास्वादुफलै रम्यैः पुष्पभारावलंबिभिः ॥ ५० ॥
लताजालवितानैश्च गुंजद्भ्रमरसंकुलैः ॥
मत्तकोकिलसन्नादैः कूजद्भिश्चित्रपक्षिभिः ॥ ५१ ॥
नृत्यन्मत्तमयूरैश्च निर्झरैर्निर्मलांबुभिः ॥
सीतया सह रामस्य लीलारसविवर्द्धनः ॥ ५२ ॥

चिद्रूपा कांचनी भूमिः समा रत्नैर्विचित्रिता ॥
समंतात्पर्वतेन्द्रस्य दिव्यकाननमंडिता ॥ ५३ ॥
यत्र मंदाकिनी रम्या वहति श्रीमती नदी ॥
मणिनिर्मलतोयाढ्या वज्रवैडूर्य्यवालुका ॥ ५४ ॥
गुंजन्मधुव्रतश्रेणी प्रफुल्लकमलाकुला ॥
चित्रपक्षिकलक्काणमुखरीकृतदिक्तटा ॥ ५५ ॥
स्वर्णस्फटिकमाणिक्यमुक्ताबद्धतटद्वया ॥
चित्रपुष्पलतापुंजकुंजानि विविधानि च ॥ ५६ ॥
मधुराणि सहस्राणि तस्यास्तीरद्वयोरपि ॥
संति नित्यविहारार्थं जानकीरामचन्द्रयोः ॥ ५७ ॥
अयोध्यापश्चिमे भागे कृष्णस्य परमात्मनः ॥
नित्यं वृन्दावनं धाम चिन्मयानंदमद्भुतम् ॥ ५८ ॥
समंताद्भूः समा यत्र कांचनी रत्नचित्रिता ॥
दिव्यवृक्षलताकुंजैर्गुंजन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ५९ ॥
नवीनैः पल्लवैः स्निग्धैः फलैः पुष्पैश्च संन्नतैः ॥
नदत्पक्षिगणैश्चित्रैर्मयूरैश्च विराजते ॥ ६० ॥
गोवर्द्धनो गिरिश्चात्र कांचनो रत्नमंडितः ॥
लतापादपसंकीर्णो गुहानिर्झरकूटवान् ॥ ६१ ॥
नदी यत्र महापुण्या कालिन्दी कृष्णवल्लभा ॥
नीलरत्नजलोत्तुंगतरंगावर्तमालिनी ॥ ६२ ॥
फुल्लपंकेरुहा मत्तकूजद्भृंगविहंगमा ॥
स्वर्णघट्टतटा रत्नवालुका शोभते भृशम् ॥ ६३ ॥
गोपीगोपगणैर्नित्यैर्गोवृन्दैर्गोपबालकैः ॥
श्रीमन्नंदयशोदाभ्यां भ्रात्रा श्रीमद्बलेन च ॥ ६४ ॥

सखीभिर्गोपकन्याभिर्वृषभानुसुतादिभिः ॥
सार्द्धं वसति तत्रैव श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ॥ ६५ ॥
क्वणद्वेणुमनोहारी विहारी रासमण्डले ॥
श्रीराधिकामुखांभोजमकरंदमधुव्रतः ॥ ६६ ॥
सत्यायाश्चोत्तरे भागे महावैकुण्ठसञ्ज्ञकम् ॥
महाविष्णोः परं धाम ध्रुवं वेदैः प्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥
सर्वतः खचिता रत्नैर्भूमिर्यत्र हिरण्मयी ॥
वापी कुंडतडागैश्च दिव्यारामैर्विराजते ॥ ६८ ॥
समंताच्च नदी यत्र विरजा फुल्लपंकजा ॥
स्वच्छस्फटिकतोयौघावर्तोत्तुंगतरंगिणी ॥ ६९ ॥
स्वर्णरत्नमहातीर्था वज्रस्फटिकसैकता ॥
भृंगपक्षिगणोद्घुष्टकोलाहलसमाकुला ॥ ७० ॥
प्रासादैः पार्षदेन्द्राणां विमानैर्विविधैस्तथा ॥
चित्रशालोत्तमैर्दिव्यैर्हर्म्यजालैः सहस्रशः ॥ ७१ ॥
उच्चैर्ध्वजपताकाग्रे रत्नकांचनचित्रितैः ॥
ललनारत्नसंघैश्च तल्लोकं द्योततेऽधिकम् ॥ ७२ ॥
हैरण्यं सुमहद्रत्नैः खचितं परमायतम् ॥
तत्रकं भवनं प्रांशुप्रासादैः परिवारितम् ॥ ७३ ॥
सहस्रैः कलशैर्भातं ध्वजैश्चित्रैश्च केतुभिः ॥
मुक्तादामवितानैश्च चित्ररत्नगवाक्षकैः ॥ ७४ ॥
महद्वज्रकपाटैश्च मणिस्तंभैः सहस्रशः ॥
रत्नांगणं महाकक्षं भाति तल्लोकभूषणम् ॥ ७५ ॥
तन्मध्ये शेषपर्यंके नित्यसत्त्वैकविग्रहः ॥
आस्ते नारायणो नित्यः किशोरः सद्गुणार्णवः ॥ ७६ ॥

मेघश्यामश्चतुर्बाहुस्तडित्पीताम्बरावृतः ॥
श्यामस्निग्धालकव्रातैरुल्लसन्मुखपंकजः ॥ ७७ ॥
महद्रत्नकिरीटेन कुण्डलांगदकंकणैः ॥
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्यां च सुगंधैर्वनमालया ॥ ७८ ॥
वैजयंत्योपवीतेन मुद्रिकाहारनूपुरैः ॥
स्वर्णसूत्रेण कांच्यादिभूषणैर्भूषितो विभुः ॥ ७९ ॥
शंखचक्रगदापद्माद्यायुधैश्चाप्यलंकृतः ॥
विभाति श्रीमतीभिश्च श्रीभूलीलादिशक्तिभिः ॥ ८० ॥
विष्वक्सेनादयो नित्यमुक्ताऽमुक्ताश्च सूरयः ॥
शुद्धसत्त्वात्मकाः सर्वे श्यामलांगाश्चतुर्भुजाः ॥ ८१ ॥
दिव्यगंधानुलितांगाः पद्माक्षाः पीतवाससः ॥
सुकेशा सुस्मिता दिव्यमाल्यालंकारभूषिताः ॥ ८२ ॥
सर्वायुधधरा दिव्यललनायूथसेविताः ॥
भगवंतं श्रिया जुष्टं सेवंतेऽहर्निशं मुदा ॥ ८३ ॥
मिथिला चित्रकूटश्च श्रीमद्वृंदावनं तथा ॥
महावैकुठमेतद्धि पंचमावरणे मुने ॥ ८४ ॥
ततस्तु परमानन्दसंदोह परमाद्भुतम् ॥
अयोध्यायाश्चतुर्दिक्षु चतुर्विंशतियोजनम् ॥ ८५ ॥
सर्वतो वेष्टितं नित्यं स्वप्रकाशं परात्परम् ॥
सच्चिदेकरसानंदं मायागुणविवर्जितम् ॥ ८६ ॥
वाङ्मनोगोचरातीतं प्रमोदारण्यसंज्ञकम् ॥
रामस्यातिप्रियं धाम नित्यलीलारसास्पदम् ॥ ८७ ॥
जाम्बूनदमयी यत्र भूः समंतात्प्रकाशते ॥
चिद्रूपिणी समा श्लक्ष्णा परानंदविवर्द्धिनी ॥ ८८ ॥

चन्द्रकांतोपलैश्चित्रा क्वचिच्च स्फटिकोपलैः ॥
मणिभिः पद्मरागैश्च क्वचिद्धैर्महाप्रभैः ॥ ८९ ॥
इन्द्रनीलोपलैर्वद्धा माणिक्यैर्विविधैः क्वचित् ॥
रत्नैर्वंशच्छदैर्भातैर्वैडूर्य्यैः खचिता क्वचित् ॥ ९० ॥
अविद्धाभिश्च मुक्ताभिः प्रवालैश्च क्वचित्क्वचित् ॥
महार्हैश्चित्रिता रत्नैर्नीलपीतसितारुणैः ॥ ९१ ॥
स्यमंतैर्भ्राजमानैश्च चिंतारत्नचयैस्तथा ॥
चित्रिता वसुधा सर्वा द्योतयत्यधिकं प्रियम् ॥ ९२ ॥
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु क्रमेण तद्वने मुने ॥
गिरयः संति चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ९३ ॥
शृंगाराद्रिश्च रत्नाद्रिस्तथा लीलाऽद्रिरेव च ॥
मुक्ताद्रिश्च स्वया लक्ष्म्या द्योतयंति दिशो दश ॥ ९४ ॥
आह्लादिन्याश्च पूर्वस्यां दिशि प्रोद्यत्प्रभाकरः ॥
नीलरत्नमयो भाति शृंगाराद्रिर्मनोहरः ॥ ९५ ॥
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमद्रत्नाद्रिर्द्योतयन् वनम् ॥
पीतरत्नमयः कांत्या भूदेव्या भ्राजते प्रियः ॥ ९६ ॥
प्रतीच्यां दिशि लीलाद्रिर्लीलाया ललितप्रभा ॥
राजते रक्तरत्नाढ्यो रामस्य रतिवर्द्धनः ॥ ९७ ॥
श्रीदेव्याश्च हि लीलार्थे मुक्ताद्रिर्मण्डितो महान् ॥
उदीच्यामुज्ज्वलो रत्नैश्चन्द्रकांतैरुदंचते ॥ ९८ ॥
चित्रपुष्पौघसंपन्नैर्लतापुंजवितानकैः ॥
स्वल्पीकृतसुधास्वादुफलभारातिसंनतैः ॥ ९९ ॥
नवीनपल्लवोपेतैर्गुञ्जन्मत्तमधुव्रतैः ॥
कूजच्चित्रद्विजैर्नीलकठकेकीविनादितैः ॥ १०० ॥
प्रमत्तकोकिलाक्वाणमुखरीकृतदिङ्मुखैः ॥
विचित्रैर्विविधैः स्निग्धैर्वृक्षैर्नित्यमधुस्रवैः ॥ १०१ ॥

उन्नतैः शिखरैर्भांतैः स्यंदमानैश्च निर्झरैः ॥
गुहाभिश्च विराजंते चत्वारस्ते नगोत्तमाः ॥ १०२ ॥
तत्प्रमोदवने संति मधुराणि नवानि च ॥
वनानि द्वादशैतानि तन्नामानि शृणुष्व मे ॥ १०३ ॥
श्रीशृंगारवनं भातं विहारवनमद्भुतम् ॥
तमालं च रसालं च चंपकं चंदनं तथा ॥ १०४॥
पारिजातवनं दिव्यमशोकवनमुत्तमम् ॥
विचित्राख्यं वनं कांतं कदम्बवनमेव च ॥ १०५ ॥
तथाऽनंगवनं रम्यं वनं श्रीनागकेशरम् ॥
द्वादशैतानि नामानि वनानां कथितानि ते ॥ १०६ ॥
सर्वेषु सान्द्रनीलाभ्रनिभेषु विपिनेषु च ॥
निबिडेषु नवा नित्या विचित्रा विविधा द्रुमाः ॥ १०७ ॥
चिन्मयाः कमनीयाश्च किशोराः कामविग्रहाः ॥
सुस्निग्धाः कोमलाः सूक्ष्माश्च्योतंत्यमृतविप्रुषः ॥१०८॥
नवीनैः पल्लवैः श्लक्ष्णैर्मृदुलैर्वायुचंचलैः ॥
विचित्रैर्लंबितैर्नीलहरित्पीतारुणैर्वनैः ॥ १०९ ॥
पुष्पाणां पंचवर्णानां दिव्यानां च सुगंधिना ॥
नवानामप्रमेयाणां नित्यानामभितो भृशम् ॥ ११० ॥
प्रफुल्लानां सुधास्वादुफलानां च विशेषतः ॥
महाभारेण शाखाभिर्लुठंति धरणीतले ॥ १११ ॥
दिव्यस्वर्णमहारत्नजालैश्चित्रितवेदिकाः ॥
प्रफुल्लपंचधा पुष्पव्रतत्यौघवितानकाः ॥ ११२ ॥
सुवर्णवल्कलाः केचिन्मुक्तापुष्पावतंसकाः ॥
चिंतामणिफला नीलरत्नपल्लवशोभिताः ॥ ११३ ॥
नानापुष्परजःपृक्तशबलाः षट्पदा मुदा ॥
अनंता यत्र गुंजंति भ्रमंतो गंधगृध्नवः ॥ ११४ ॥

मत्ताः पुष्परसं पीत्वा पतंति पृथिवीतले ॥
पुनरुत्थाय धावंति पुष्पौघेषु मुहुर्मुहुः ॥ ११५ ॥
प्रविलीय पलायन्ते द्रुममन्यत्र यूथशः ॥
भ्रमरीभिः समं सर्वे विक्रीडंते समं ततः ॥ ११६ ॥
अनंता निर्वृता मत्ताः क्वचित्कूजंति कोकिलाः ॥
शारिकाश्च शुकाश्चित्राः क्वचिद्गायंति संघशः ॥ ११७ ॥
क्वचित्पारावतव्राताः कपोताश्च क्वणंति हि ॥ ११८ ॥
रटंति रागिणोत्यंतं चंचलाश्चातकाः क्वचित् ॥
चन्द्रमण्डलसंकाशाः प्रमदाभिर्मुदान्विताः ॥ ११९ ॥
हंसा मुक्ता अनंतं वै नदंति मधुरं क्वचित् ॥
क्वचित्क्रौंचाश्चकोराश्च कलहंसाश्च सारसाः ॥ १२० ॥
विचित्राः पक्षिणश्चान्ये स्वयोपिद्भिर्मनोहराः ॥
रमंते नादयंतश्च वनं नानारवैर्भृशम् ॥ १२१ ॥
तिरस्कृताऽमृतस्वादुफलानि विविधानि च ॥
अदंति तेषु सर्वेषु विचित्रेषु वनेषु च ॥ १२२ ॥
प्रनृत्यंति मयूरीभिः सार्द्धं मत्ताः शिखंडिनः ॥
नित्यं श्रीकर्णिकाराश्च कुन्दवृन्दाश्च मल्लिकाः ॥ १२३ ॥
लवंगलतिका जात्यो मालत्यो यूथिकास्तथा ॥
माधव्यश्चैव केतक्यो वासंत्यः परमाद्भुतम् ॥ १२४ ॥
स्थलजाः कंजवृंदाश्च सेवंत्यो विविधास्तथा ॥
अन्याश्चित्रा लताः स्वैः स्वैः पुष्पौघैर्विविधैर्भृशम् ॥ १२५ ॥
कारयंति वनं सर्वं दिव्यं गंधाधिवासितम् ॥
वाताश्च शीतला मंदा सुगंधास्तद्वने सदा ॥ १२६ ॥
प्रवांति परमानन्दं वर्द्धनाः षट्पदानुगाः ॥
नानापुष्परजोभिश्च रंजिता भूर्विराजते ॥ १२७ ॥

क्वचित्पीता क्वचिन्नीला हरिद्रक्ता सिता क्वचित् ॥
पादपप्रच्युतैः पुष्पैस्सच्छन्ना पंचवर्णकैः ॥ १२८ ॥
कुथेवाभाति विस्तीर्णा चित्रवर्णा क्वचित्क्वचित् ॥
दीर्घिका विविधास्तत्र मणिनिर्मलवारिणा ॥ १२९ ॥
पूर्णा माणिक्यसोपानाः स्फटिकोपलकुट्टिमाः ॥
तीरस्थद्रुमसंछन्नाः प्रफुल्लकमलोत्पलाः ॥ १३० ॥
कूजत्पक्षिगणैश्चित्रैर्गुंजद्भृंगैर्विनादिताः ॥
फुल्लपंकजकल्लोलजला गुंजन्मधुव्रताः ॥ १३१ ॥
पुष्करिण्यो द्विजोद्घुष्टद्रुमगुल्मलतावृताः ॥
तटाकानि सुरम्याणि विशालानि वने वने ॥ १३२ ॥
विचित्रमणिसोपानतीर्थानि विविधानि च ॥
कुण्डानि कमनीयानि संति स्फटिकवारिभिः ॥ १३३ ॥
पूर्णानि फुल्लकह्लारशतपत्राण्यनेकशः ॥
भृंगसंघप्रगीतानि शुकहंसरुतानि च ॥ १३४ ॥
संनादितवनांतानि नदद्भिश्चित्रपक्षिभिः ॥
प्रासादा मण्डपाः सांद्राः काननानां क्वचित्क्वचित् ॥१३५॥
मध्ये मध्ये प्रदीप्यंते वेदिका विविधास्तथा ॥
कांचनाश्चंद्रकांतैश्च मणिभिश्चित्रिताः क्वचित् ॥१३६॥
चिंतारत्नैः क्वचिच्चेन्द्रनीलरत्नैर्विचित्रिताः ॥
पद्मरागप्रवेकैश्च क्वचिद्वज्रैः स्फुरत्प्रभैः ॥ १३७ ॥
वैडूर्य्यैर्भासमानैश्च स्यंमतैः खचिताः क्वचित् ॥
क्वचिद्वंशच्छदैर्भातैर्माणिक्यैश्च मनोहरैः ॥ १३८ ॥
हरिद्रत्नैश्च मुक्ताभिः प्रवालैश्चापि मंडिताः ॥
अन्यैर्विचित्ररत्नैश्च मृदुलास्तरणैस्तथा ॥ १३९ ॥
मुक्तादामवितानैश्च दर्पणैश्चाप्यलंकृताः ॥
मुक्तापुष्पलताजालकुंजानि मधुराण्यलम् ॥ १४० ॥

भृंगपक्षिप्रघुष्टानि तद्वने संत्यनेकशः ॥
वसंतो हि क्वचित्तत्र नित्यमेव विराजते ॥ १४१ ॥
निदाघश्च क्वचित्प्रावृट् क्वचिन्नित्यं शरत्तथा ॥
हेमंतश्च क्वचिन्नित्यं शिशिरो वर्त्तते क्वचित् ॥ १४२ ॥
षडेते ऋतवः स्वस्वभूत्या वै संवसंति हि ॥
देशीदेवगिरिश्चैव वैराडी टोडिका तथा ॥ १४३ ॥
ललिता चैव हिंडोली रागिण्यः षट् प्रकीर्तिताः ॥
मूर्तिमंतीभिरेताभिः स्वपत्नीभिर्मनोहराः ॥ १४४ ॥
वसंतो मूर्तिमान्रागो वसंते वसते सदा ॥
भैरवी गुर्जरी चैव रेवा गुणकरी तथा ॥ १४५ ॥
वंगाक्षी ब्रह्मली चैव रागिण्यः षट् सुविग्रहाः ॥
एताभिः स्वसहायाभिर्योषिद्भिर्भैरवोऽद्भुतः ॥ १४६ ॥
रामः संवर्तते नित्यं निदाघे मूर्तिमान्स्वयम्
मल्लारी शोरठी चैव सावेरी कौशिकी तथा ॥ १४७ ॥
गंधारी हरिश्रृंगारा रागिण्यः षट् सुखप्रदाः ॥
सुरूपाभिःस्वभार्याभिरेताभिर्मूर्तिमान्महान् ॥ १४८ ॥
प्रावृषि प्रीतिकृन्नित्यं मेघरागप्रतिष्ठितः ॥
विभासी चाथ भूपाली मालश्रीः पटमंजरी ॥ १४९ ॥
वडहंसी च कर्णाटी रागिण्योऽद्भुतविग्रहाः ॥
स्वदारैः षड्भिरेताभिः पुत्रपौत्रस्नुषादिभिः ॥ १५० ॥
रूपवान्पंचमो रागः सर्वदा शरदि स्थितः ॥
कामोदी चापि कल्याणी ह्याभीरी नाटिका तथा ॥ १५१ ॥
सालंगी नटहंमीरी रागिण्यः सुरतिप्रदाः ॥
दिव्यरूपाभिरेताभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यरूपवान् ॥ १५२ ॥

हेमंते तिष्ठते रागो वृहन्नाटश्च नित्यदा ॥
मालवी त्रिवर्णी गौरी केदारी मधुमाधवी ॥ १५३ ॥
तथा पाहाडिका चैव रागिण्यः श्रुतिवल्लभाः ॥
षड्भिर्मूर्तिमतीभिः स्वनायिकाभिश्च मूर्तिमान् ॥ १५४ ॥
शिशिरे संस्थितो नित्यं श्रीरागः सकुटुंवकः ॥
रागाः षट् पुरुषाश्चेत्थं षट् त्रिंशच्च तथा स्त्रियः॥१५५॥
रागिण्यः परिवारैश्च निवसंति सदा वने ॥
प्रमोदकाननं षष्ठमेतदावरणं महत् ॥ १५६ ॥
तव भक्त्या प्रसन्नेन मया प्रोक्तं द्विजोत्तम ॥
ततश्च सरितामादिकारणं सरयूः सरित् ॥ १५७ ॥
श्रीमती शाश्वती नित्या सर्वलोकैकपावनी ॥
सच्चिद्घनपरानन्दरूपिणी रामवल्लभा ॥ १५८ ॥
विरजाद्याः परा नद्यो यदंशाश्लोकविश्रुताः ॥
यन्नामोच्चारणात्सद्यो मुक्ता संसारबंधनात् ॥ १५९ ॥
प्राप्नुयुर्दिव्यदेहांश्च समीतं रघुनन्दनम् ॥
तज्जलं निर्मलं कांतं गंभीरावर्तशोभितम् ॥ १६० ॥
उत्तुंगविलसद्वीचिधवलीकृतदिङ्मुखम् ॥
मंदीकृतशरच्चन्द्रचयं चन्द्रमणिप्रभम् ॥ १६१ ॥
तिरस्कृतसुधास्वादु कुन्दवृन्दहिमद्युति ॥
प्रफुल्लैः पङ्कजै रक्तैः शुक्लैः पीतैस्तथासितैः ॥ १६२ ॥
अन्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः सुगंधीकृतमद्भुतम् ॥
हंसैः क्रौंचैश्चकोरैश्च चक्रवाकश्च सारसैः ॥ १६३ ॥
सदारैरतिकूजद्भिश्चित्रैश्चान्यैः पतत्रिभिः ॥
भ्रमद्भिर्भ्रमरैर्मत्तैर्गुंजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥ १६४ ॥
मत्ताभिर्भ्रमरीभिश्च समंतान्मुखरीकृतम् ॥
मणिभिश्चन्द्रकांतैश्च पद्मरागैश्च कौस्तुभैः ॥ १६५ ॥

क्वचिद्वंशाच्छदैर्वज्रैश्चेन्द्रनीलैःस्यमंतकैः ॥
चिंतारत्नैश्च वैडूर्य्यैर्मुक्ताभिः स्फटिकैः क्वचित् ॥ १६६ ॥
माणिक्यैश्च क्वचिद्रत्नैर्नानावर्णैः सकांचनैः ॥
खचितानां सुतीर्थानां सहस्राणां तटद्वये ॥ १६७ ॥
प्रतिबिंबेर्जलं स्वच्छं नानावर्णं प्रकाशते ॥
वज्रस्फटिकमुक्तानां सूक्ष्मचूर्णानि वालुकाः ॥ १६८ ॥
तथा चन्द्रमणीनां च द्योतयंति सरित्तटे ॥
एवं श्रीसरयु रम्या परमानंददायिनी ॥ १६९ ॥
सप्तमावरणं विद्धि साकेतस्य सरिद्वरा ॥
सप्तावरणमध्ये तु राजते रामवल्लभा ॥ १७० ॥
अयोध्यानगरी सच्चित्सांद्रानन्दैकविग्रहा ॥
इतीदं वर्णितं नित्यं सप्तावरणसंयुतम् ॥
रामधामैकसिद्धांतं स्वरूपं मुनिसत्तम ॥ १७१ ॥
पठेद्वा शृणुयान्नित्यं य एतद्भक्तिसंयुतः ॥
स गच्छेत्परमं धाम साकेतं योगिदुर्लभम् ॥ १७२ ॥
ज्ञानं योगश्च ध्यानं च तपश्चात्मविनिग्रहः ॥
नाना यज्ञाश्च दानानि सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ १७३ ॥
एतस्य पाठमात्रेण श्रवणेन च यत्फलम् ॥
भवेत्तस्य कलां विप्र साहस्रामपि वाप्नुयुः ॥ १७४ ॥

श्रीभरद्वाज उवाच ॥

तत्त्वामृतं पीतमनन्यचेतसा सुधाधिकं त्वन्मुखनिर्गतं मया ॥
न्योस्म्यहं नाथ पदद्वयं प्रभो नमामि नित्यं च तवास्मि किंकरः ॥

इति श्रीमद्वशिष्ठसंहितायां श्रीमद्वशिष्ठभरद्वाजसंवादे श्रीमद्रामधाम-
नित्यस्वरूपवर्णनो नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णुर्य्यस्य दिव्यगुणाश्च ॥ स एव कार्यकारणयोः परः परमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव ॥इत्यथर्वणे श्रुतिः ॥ स श्रीरामः सवितारी सर्वेषामीश्वरः, यमेवेष वृणुते स पुमानस्तु, यमवैदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव, इतीमं नरहरिः स्तौतीमं गंधमादनः, स्तौतीमं यज्ञतनुः, स्तौतीमं महाविष्णुः, स्तौतीमं विष्णुः, स्तौतीमं महाशंभुः, स्तौतीमं द्वैतं मण्डलं तपति यत्पुरुषं दक्षिणाक्षं मण्डलो वै मण्डलाचार्य्यः मण्डलस्थमिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम् ॥

(परमोपदेशः)

अल्प तो अवधि जीव तामें बहु सोच, पोच, करिबेको बहुत है काह काह कीजिये । पार तो पुरानहूंको वेदहूंको अन्त नाहि, बानीहू अनेक चित कहां कहां दीजिये ॥ काव्यको कला अनंत, छन्दको प्रबंध घनो, रागतो रसीले रस कहां कहां पीजिये । सब बातोंकी एक बात तुलसी बताये जात, जन्म जो सुधारा चहो राम नाम लीजिये ॥

इति श्रीअयोध्यापुरीस्थित कनकभवननिवासी वैष्णव श्रीसरयूदासजी कृत श्रीउपासनात्रयसिद्धांतरहस्य समाप्त ॥ श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु शुभ भवतु ॥

पुस्तक मिलनेका पता-
वैष्णव श्रीसरयूदासजी,
कनकभवन-अयोध्या.